ॐ
तेरे मेरे लिए
जे. पी. वास्वाणी
साधू टी. एल. वास्वाणी
जे. पी. वास्वाणी

तेरे मेरे लिए

जे. पी. वास्वाणी

अनुवादक
डॉ. परसो जे. गिदवाणी

दादा जशन जयन्ती
२-८-१९९०

३०-०० रुपये

समर्पण

प्रातःस्मरणीय गुरुदेव

के

चरण कमलों में

प्रकाशक की ओर से

यह पुस्तक सिन्धी में प्रकाशित "रूह रिहाण" (जिसका शाब्दिक अनुवाद होगा आध्यात्मिक वार्तालाप) के प्रथम भाग का हिन्दी अनुवाद है। पूज्य दादा जशन वास्वाणी जी द्वारा समय समय पर देश विदेश में व्यक्त किये गये आध्यात्मिक विचारों का संकलन है। अत: समीचीन होगा कि इस पुस्तक के प्रारम्भ में गुरूदेव दादा साधू टी. एल्. वास्वाणी जी के सम्बन्ध में तथा उनके परम शिष्य एवं आध्यात्मिक उत्तराधिकारी दादा जशन जी के सम्बन्ध में दो शब्द लिखे जायँ।

नियमित रुप से सिन्धी परम्परा के अनुसार बड़ा भाई छोटे भाई के सब भार उठाता है। इसी प्रकार हम साधू टी. एल्. वास्वाणी एवं पूज्य जशन वास्वाणी जी को अपना पूजय मानते हुए आदरपूर्वक उन्हें "दादा" कहकर पुकारते हैं।

सूर्य के स्वर्ण किरणों से सुसज्जित सिन्धू नदी के अमृत रूपी जल से सरसबज़ सिन्धू देश की स्वर्ण भूमि ने समय समय पर अनेक सूफ़ी सन्तों, फ़कीरों, दर्वेशों एवं अनेक अवतारों को जन्म दिया है। ऐसे सन्तों के श्रोमणि सन्त साधु टी. एल. वास्वाणी जी का जन्म २५ नवम्बर १८७९ में कार्तिक एकादशी के दिन हैदराबाद सिन्ध में एक सत्पुरुष श्री लीलाराम वास्वाणी जी के घर में हुआ था। बचपन से ही यह बालक ईश्वरीय आभा से ओत प्रोत अलौकिक आँखों से ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य का ध्यान करते हुए, आकाश के चमकते सितारों को देखता रहा और अपने आप से पूछता रहा, "हे प्रभु! तुम कहाँ हो?" 8 वर्षों की अल्पायु में उन्हें दिव्य ज्योति के दर्शन प्राप्त होते हैं। जब 11 वर्षों के थे तब इस अलौकिक बालक के पूज्य पिता श्री लीलाराम वास्वाणी परलोक पधार गये। अपनी पूज्य माता वराँ देवी के धार्मिक संस्कारों से भरे लालन पालन से यह बालक १९०२ में M.A. की परीक्षा पास करता है। बचपन से ही विद्यालय एवं कॉलेज के विषयों के अध्ययन के साथ साथ उन्होंने गीता, वेद एवं अन्य शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। वे रात रात भर जागकर मौन एवं ध्यान में व्यतीत करते थे। उनका हृदय अलौकिक शक्ति

में रम चुका था। परन्तु अपनी पूज्य माता जी के आज्ञानुसार कलकत्ता, कराची, लाहोर, कूच बिहार एवं पटियाला के कॉलेजों में प्रोफेसर एवं प्रिन्सिपाल के उच्च पदों को सुशोभित किया। इस समय तक उनकी आध्यात्मिक सुगन्ध दूर दूर तक फैल चुकी थी। महात्मा गांधी एवं रविन्द्र नाथ टैगोर के साथ उनका स्नेहमय सम्पर्क था। ३० वर्षों की युवावस्था में (१९१०) उन्हें विश्वधर्म सम्मेलन बर्लन में भारत के प्रतिनिधि के रुप में निमंत्रण मिलना उनके जीवन की एक असाधारण बात थी।

बर्लन में उनके भाषण भारत की सभ्यता, संस्कृति एवं सनातन धर्म के मूल आदर्शों के मधुर संगम के आलाप थे जिनसे श्रोता अत्यधिक प्रभावित हुए। ये सन्त विद्या के सागर, दार्शनिक एवं उच्चकोटि के कवि थे।

अपनी माता को उन्होंने वचन दिया था कि उनके जीवित होने तक वे संसार का त्याग नहीं करेंगे। अतएव ४० वर्षों की अवस्था में अपनी माता के देहान्त होने पर उन्होने तार द्वारा पटियाला कॉलेज के प्रिन्सिपाल के पद से त्यागपत्र दे दिया। इस ब्रह्मचारी सन्त ने अपना जीवन अर्पित कर दिया प्रभु के चरणों, लोकसेवा एवं मानव कल्याण में तथा प्यार, सत्य एवं अंहिसा की राह में। छोटे एवं कोमल हृदयों वाले बच्चों में सुन्दर संस्कारों के बीज बोने के लिए इस महान सन्त ने मीरा स्कूलों से अपनी साधना आरम्भ की, जिससे आगे चलकर मीरा कॉलेज स्थापित हआ। ये विद्या के मन्दिर भारत में पुणे एवं अन्य नगरों में तथा विदेशों में भी स्थापित हो चुके हैं। साधू वास्वाणी जी के अन्य कार्य हैं लोगों को आध्यात्मिक मार्ग पर ले जाने के लिए सत्संग, दीन दुखियों की चिकित्सा के लिए अस्पताल, निर्धन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए अनेक योजनाएँ आदि। साधू वास्वाणीजी द्वारा स्थापित संस्था आज "साधु वास्वाणी मिशन" के नाम से विश्वविख्यात है। यह सन्त अंहिसा के अवतार थे। उनका जन्मदिवस २५ नवम्बर प्रति वर्ष देश एवं विदेश में "शाकाहारी दिवस" (Meatless Day) के रूप में मनाया जाता है। १६ जनवरी १९६६ में ये महान सन्त पुणे की पुण्यभूमि में ब्रह्मलीन हुए।

अब ये कार्य उनके परम शिष्य एवं सन्त दादा जे. पी. वास्वाणी जी के मार्गदर्शन में चल रहा है। पूज्य दादा जे. पी. वास्वाणी जी का जन्म

२ अगस्त १९१८ में साधु टी. एल्. वास्वाणी जी के ज्येष्ठ भ्राता श्री पहलाजराइ के घर में हुआ। ये जन्म से ही तीव्र बुद्धि एवं असाधारण मस्तिष्क की शक्तियों के धनि थे। २१ वर्षों की आयु में उन्होंने M.Sc. की उपाधि प्राप्त की और उनके शोधप्रबन्ध (thesis) के परीक्षक विश्वविख्यात नोबल पुरस्कार विजेयता वैज्ञानिक सर सी. वी. रमन थे,जिन्होंने उनके शोधप्रबन्ध की अत्यधिक सराहना की। वे कुछ समय के लिए सुप्रसिद्ध डी. जे. सिन्ध कॉलेज कराची (सिन्ध) में fellow भी रहे और फिर पुणे में सेंट मीरा कॉलेज के प्रिन्सिपाल का पद अवैत्निक (honorary) भी संभाला। उनकी आध्यात्मिक यात्रा उनके गुरुदेव साधू वास्वाणी जी के मार्गदर्शन में हुई। वे सब कुछ त्याग कर अपने गुरुदेव के आशीर्वाद से प्रभु के रंग में रंग जाते हैं। ये विनम्र सन्त आध्यात्मिक ज्ञान के सागर हैं, दार्शनिक एवं कवि हैं, तथा प्यार विनम्रता एवं मुस्कान के सदैव बहते हुए एक झरने हैं। इस दर्वेश का जीवन मधु के समान मीठा है जिसे स्वयं ही पता नहीं रहता कि उसमें कितना मिठास है।

हम अत्यधिक आभारी हैं विनम्र एवं संकोची स्वभाव के डॉ.परसो गिदवाणी के जिन्होंने पूज्य साधू वास्वाणी जी के एवं दर्वेश जे. पी. वास्वाणी जी का आर्शीवाद ग्रहण कर बड़ी श्रद्धा से इस पुस्तक का सिन्धी से हिन्दी में अनुवाद किया है। वे इस समय डेक्कन कॉलेज पोस्ट ग्रैज्वेट अैण्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट पुणे में रीडर इन सिन्धी लिंगिविस्टकस हैं। उन्हें इस उत्तम कार्य के लिए धन्यवाद। बहिन शीला सिपी को भी धन्यवाद है जिसने प्यार एवं श्रद्धा से परिश्रम करके इस पुस्तक को सजाने एवं संवारने में हर प्रकार की सहायता दी। अन्त में श्री सुरेन्द्र शहाणी जिन्होंने इस पुस्तक को लेसर प्रिन्टर पर तैयार किया, एवं परशुराम प्रिन्टिग प्रेस जिन्होने इस पुस्तक के कव्हर की छपाई की तथा श्री विजय बी. आंग्रे जिन्होंने सुन्दर कव्हर को design किया, इन सब का मैं हृदयपूर्वक आभार मानता हूँ।

— सीतल जी. मेंघाणी

स्वप्न की साक्षी

(१९६० में दादा टी. एल. वास्वाणी जी ने दादा जशन जी के जन्म दिन पर एक बहुत ही मर्मस्पर्शी सन्देश दिया था। इसमें से कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं।)

प्रिय जशन! तुम्हें तुम्हारे पिता की ओर से एक बहुत ही विचित्र पैतृकसम्पत्ति प्राप्त हुई है। मेरे प्रिय भैय्या (दादा जशन जी के पूज्य पिता एवं दादा टी. एल. वास्वाणी जी के ज्येष्ठ भ्राता) ने बालक जशन को कौनसी पैतृक सम्पत्ति दी है? भैय्या के हृदय में सदैव दया एवं कृपा रहती थी। उन्होंने 'दया धर्म का मूल है' का अर्थ भलीभाँति समझा था।जीवन का उद्देश्य दया है, और आशा है कि यह दया तुम्हारे हृदय में रहे, यह दया तुम्हारे जीवन की उच्चाकाँक्षा (aspiration) हो और यह दया सदैव तुम्हारे जीवन में दीप्तिमान हो। मैं तो कहता हूँ कि यह दया है गंगा। गंगा जो सदैव बहती रहती है। और बहते बहते कैसा जल दे रही है? वह जल जो इस तपते हुए संसार को चाहिए। जिस जल पीने से इस संसार का ताप कुछ कम हो!

मेरे प्रिय जशन! इस समय मैं प्यारे प्रभु के चरणों में आभार मानते हुए शीश झुकाता हूँ, ताकि वे तुम्हारे जीवन का लक्ष्य पूरा करें।

कल रात, अर्ध रात्रि में मैं तुमसे दूर दूर होता गया, न जाने कहाँ मैं Homeless Space में गया। मेरा रूह और मेरी आत्मा तुमसे दूर और पृथ्वी से दूर दूर होते गये। मैने क्या देखा? मैंने देखा कि मेरा प्रभु, मेरा प्रियतम खड़ा है अकेला। एक कोने में अकेला खड़ा है मेरा प्यारा कृष्ण! मेरे जीवन का पथप्रदर्शक अकेला ही कोने में खड़ा है और कह रहा है :- "इस समय मुझे चाहिए वे जिन्हें आध्यात्मिक स्वप्न हैं, जिनका लक्ष्य है दया एवं प्रेम निर्धन एवं दुखियों के लिए। ऐसे स्वप्न जिन्हें हैं, वे प्रियजन मुझे चाहिए। वे जो नगर नगर और शहर शहर में जाकर दीन दुखियों की सेवा करें।" ऐसा मैंने देखा ।

अब मेरे हृदय की यही प्यास है कि श्री कृष्ण का यह आशीर्वाद लेकर तुम सम्पूर्ण जीवन सेवा में अर्पण करो, दया के साथ! जहाँ भी जाओ, वहाँ

पर एक वृक्ष अपने साथ लेते जाओ। कौन सा वृक्ष? वह वृक्ष जो मैंने देखा था, बहुत वर्ष पूर्व। उस वृक्ष के नीचे प्यास में आकर बैठा था एक तपस्वी जिसके हृदय में पक्षियों एवं पशुओं के लिए प्यार था। फिर वर्षों की तपस्या के पश्चात् प्यारे गौतम के हृदय में ज्योति प्रज्वलित हुई! इस वृक्ष को कहते हैं "बोधी वृक्ष"। इस वृक्ष ने गौतम को प्रबल किया। फिर नगर नगर जाता है और हर स्थान पर सन्देश देता है कि तुम सब एक हो। न केवल मनुष्य जाति अपितु पशु एवं पक्षी सब एक हैं। इसलिए एक दूसरे से प्यार बाँटो।

ऐसा ही एक वृक्ष हाथों में लेकर, ऋषियों का सन्देश लेकर तुम जाओ और कहो, "एक होकर तुम आपस में एक दूसरे के साथी बनो, एक दूसरे के सहायक बनो, एक दूसरे से प्रेम करो, ऋषियों एवं मुनियों के आदर्शों को ऊँचा करो, और भारत का शान बढ़ाओ और फिर भारत को वास्तविक स्वतंत्रता दिलाओ।"

Printed by : Surender .P. Shahani, Kika Laser Printers,
715, Bhavani Peth, (Near Poona College), Pune 411 042.
Phone : 651635, 654424

Published by Sital G. Menghani C/o Sadhu Vaswani Mission,
10, Sadhu Vaswani Road, Pune 411 001. Phone : 662310

ऋषियों के मार्गपर

प्राचीन भारत में ऋषिगण प्रकृति की गोदि में बैठते थे और उनके सम्मुख बैठते थे जिज्ञासू। ऋषियों के जीवन में आत्मिक प्रकाश होता था और उनके हृदय हरिनाम से परिपूर्ण होते थे। उनके नयनों से निर्मलता का आभास मिलता था। उनके शब्दों में आत्मिक बल होता था और उनके वचनों में होती थी अद्‌भुत उमँगे। जब जिज्ञासू उनके निकट बैठते थे तब उनके हृदय आनन्दित हो जाते थे।

वर्तमान समय में भी एक ऋषि आध्यात्मिक प्रकाश के किरण बिखेर रहा है। यह अनुभव उनका है जिन्होंने प्यारे दादा जशन के आध्यात्मिक वार्तालापों का अमृत चरवा है। आध्यात्मिक वार्तालाप आरम्भ होते ही सरल, विनम्र एवं आडम्बर से दूर यह आला इंसान विचित्र तरंगे उत्पन्न कर देता है। जैसे ही उनके मुख से मधुर एवं मीठे शब्द निकलते हैं वैसे ही चारों ओर एक विचित्र वायुमण्डल का निर्माण हो जाता है। प्यासे हृदय दादा जशन की गंगारूपी वाणी में डुबकी लगाकर अपने आपको निर्मल कर् देते हैं।

दादा जशन का आध्यात्मिक वार्तालाप है रूह की राहत। जब वे बोलना आरम्भ करते हैं तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि दया के इस साक्षात स्वरुप के मुख से जैसे हीरे, जवाहर, एवं रत्नों की वर्षा सी होने लगती है। इस रूहानी रहबर के अमृत वचन प्यासे हृदयों की प्यास बुझाते हैं, उन्हें सान्तवना देते हैं, तथा सुनने वालों के अत्मा की तृप्ति करते हैं। इस विचित्र वातावरण का रहस्य क्या है? निःसंन्देह दादा जशन एक उच्चकोटि के महापुरुष हैं, विद्वान हैं और उनके मुख में सरस्वती है। परन्तु आध्यात्मिक वार्तालाप का क्या रहस्य है? ये वस्तुतः दादा जशन की आत्मिक शक्ति के प्रतिक हैं। दादा जशन एक आधुनिक ऋषि हैं और उनका सम्बन्ध आध्यात्मिक संसार से है। उसी आध्यात्मिक संसार से प्राप्त किया हुआ कोष ही वे वस्तुतः अपने आध्यात्मिक वार्तालापों में बाँटते हैं। आज ये कार्यक्रम विश्व कें कई देशों में अनेक हृदयों को आध्यात्मिक जागृति की ओर अग्रसर कर रहे हैं।

आध्यात्मिक वार्तालाप व्याख्यान या धार्मिक प्रवचन नहीं हैं। ये एक ऋषि के प्रकाशमय हृदय की धाराएँ हैं जो भाग्यशाली हृदयों को प्राप्त होती हैं। इन से शंकाए दूर होती हैं। बेचैनी दूर होती है और हृदय को सान्तवना मिलती है। सुनने एवं पढ़ने वालों को यह आभास होने लगता है कि वे इस संसार में चन्द रोज़ के महमान हैं। संसार छोड़ना अवश्य है। इसलिए क्यों न हम अपना अमूल्य जीवन प्रभु की कृपा में बिताएँ।

प्यारे प्रभु का आशीर्वाद इस सुन्दर पुस्तक पर हो।

— गंगाराम साजनदास

विषय – सूची

१. है कुछ स्मरण? ११
(ए सरीरा मेरिया)
२. एक सहारा है तुम्हारा मुझे २१
(है एक सहारा तुम्हारा, अलख अविनाशी!)
३. "प्रेय" एवं "श्रेय" २५
(जेता समुद्र सागर नीर भरिया,)
४. सत्संग की महिमा ३५
(मन मेरा पंखी भया, उड़ चला आकाश)
५. प्रभु को प्राप्त करने का मार्ग ३९
(कई कोटि दर्शन प्रभु प्यास)
६. राधा की पुकार ४५
(श्याम तुम्हारे दर्शन बिना मैं कैसे जीवित रहूँ?)
७. खोज में निकलो ५३
(बीच गगन में बीना बाजे)
८. उसकी ओर देखो ५५
(न ही रोओ, न ही चिल्लाओ)
९. फ़ना हो जाओ ५८
(द्वार पर तुम्हारे अब खड़ी हूँ मैं)
१०. मुश्किल कुशा की ओर चलो ६३
(ऐ दिल! तुम फ़िक्र मत करो, तेरा भी खुदा है)
११. अभ्यास करो ६८
(काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!)
१२. जो आए प्रभु की ओर से, वह सब मीठा ८१
(सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर)
१३. प्रभु नहीं मिला तो फिर क्या मिला? ९५
(सारा संसार मिला और प्रभु नहीं मिला, तो क्या मिला?)

है कुछ स्मरण ?

दादा : आज का सुविचार -

"ए सरीरा मेरिया, इस जग में आयकर, क्या तुधु करम कमाया?" आज का सुविचार गुरुवाणी में से है, गुरु साहब फ़रमाते हैं:-

"ए शरीर! इस संसार में आकर तुमने कौन सा कर्म कमाया है। मुझे आगे ले चले हो या कूँए में ढकेला है?" शरीर के प्रभाव में आकर हम कितने ही ग़लत काम करते हैं। जाते हैं अधिक लुढ़कते। इस शरीर की इन्द्रियाँ हमें किस प्रकार गहरे खड्डे में ढकेलती जा रही हैं। श्री कृष्ण गीता में कहते हैं:–

"ये इन्द्रियाँ बहुत शक्तिशाली हैं, बहुत बलवान हैं, बुद्धिमान व्यक्तियों ने कितने ही यत्न किये, फिर भी इन इन्द्रियों ने उनके मन में लहरें उठाईं।"

कितना ही अच्छा हो कि आज हम अपने आपसे पूछें "हे मेरे शरीर! यहाँ आकर तुमने कौन सी कमाई की है?"

यह शरीर है नाव के समान। यह नाव हमें ले जायेगी आगे और आगे। यदि इस नाव पर हमारा नियंत्रण है तो यह हमें उस पार ले जायेगी जहाँ श्याम सुन्दर होंठों पर बीना रखकर हम में से एक एक को बुला रहा है। कह रहा है, "आओ! आओ! आजा! आजा! विश्राम पाओ!" यह मधुर स्वर तुमने कभी सुना है? श्याम का स्वर? यह स्वर भी इस शरीर के द्वारा ही सुन सकते हैं। इस शरीर के द्वारा हमें एक बहुत बड़ा अवसर प्राप्त हुआ है, पर हम इस शरीर को प्रायः भोग में लगाते हैं। इस कारण दूर और दूर होते जाते हैं और अन्धिकार एवं कालिख के पर्दे चढ़ाते जाते हैं।

"ए सरीरा मेरिया, इस जग में आयकर, क्या तुधु करम कमाया?"

यह शरीर मिला है तो कमाई करें, परन्तु यहाँ आकर हम यह भूल गये हैं। हमारा रोग है विस्मरण का रोग।

प्यारे दादा ई. सन्. १९१० में यूरोप में जा रहे थे। प्यारे दादा के एक मित्र मिस्टर कपूर कार्यकारी अभियंता (Executive Engineer) कराची में होते थे। उन दिनों में यह पद बहुत बड़ा माना जाता था। उन्होंने अपने बेटे को

विदेश पढ़ने के लिए भेजा था। जाते समय उन्होंने अपने बेटे से कह दिया था कि वह एक सप्ताह में एक पत्र अवश्य लिखा करे। प्रारम्भ में यह बालक प्रति सप्ताह एक पत्र लिखा करता था। परन्तु बाद में पत्र आने बन्द हो गये। एक मास बीत गया, दो मास बीत गये और तीन मास बीत गये। प्यारे दादा जब यूरोप जा रहे थे तो मिस्टर कपूर ने उनसे कहा, "आप वहाँ जा रहे हैं। मेरे बच्चे का वहाँ पर आप पता लगायें तो अच्छा होगा। मुझे कोई पत्र नहीं आया है। मुझे आप पता लगाकर दें।"

प्यारे दादा जर्मनी से होकर लंदन में आए। दादा को स्मरण था। इस बालक के सम्बन्ध में उन्होंने पता लगाया। पता लगाते लगाते दादा कहाँ जाकर उस बालक को देखते हैं? एक शराब के अड्डे पर इस बालक को देखते हैं। शराब पी रहा था। अपने नशे में चूर था। दादा को बताया गया कि वह किसी बुरे संग में फँस गया है। शराब पीता है, जूआ खेलता है और भी कई ऐसे काम करता है।

प्यारे दादा आते हैं। आकर उसके सम्मुख बैठ जाते हैं। आकर उसकी आँखों में देखते हैं। उस बालक का नाम था "प्रीतम"। प्यारे दादा उससे कहते हैं, "प्रीतम है कुछ स्मरण?"

बालक पूछता है, "किसका स्मरण"?

फिर उस बालक को स्मरण हो आता है अपने माता पिता का। अपने पिता और अपनी माता का जिन्होंने उसे विदेश पढ़ने के लिए भेजा था। भेजा था कि जाकर उच्च शिक्षा ग्रहण करो और न शराब पीओ और जूआ खेलो। Recognition dawns suddenly in his eyes उसकी आँखे ही कुछ और प्रकार की हो जाती हैं। वह स्वयं से प्रण करता है कि वह आज के पश्चात् दूसरा जीवन जीएगा। यह जीवन नहीं बिताएगा।

हम भी ऐसे ही हैं। हमारे पिता ने हमें यहाँ भेजा कमाई के लिए। हमारे कितने ही प्रियजन विदेशों में जाते हें कमाने के लिए। हम भी यहाँ पर आए कमाने के लिए। पर यहाँ आकर हम कैसी कैसी बातों में उलझ गये हैं? रमी खेल रहे हैं bridge (ताश के पतों का एक प्रकार का खेल) खेल रहे हैं।

"है कुछ स्मरण?" कितना ही अच्छा हो कि कोई आकर हमारें हृदय में भी यह स्मरण कराये।

"ए सरीरा मेरिया, इस जग में आयकर, क्या तुधु करम कमाया?"

कमाई के लिए आए और यहाँ आकर तुमने कौन सी कमाई की है?

मेरे प्रिय यहाँ आकर तुमने इतने वर्ष बिताएँ हैं कौन सी कमाई की है? हम स्वयं से पूछें। हम में एक एक इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। वहाँ चलेंगे तो सर्वप्रथम प्रश्न यह पूछा जाएगा – "मेरे बालक! तुमने कौन सी कमाई की?!" फिर तुम उत्तर दोगे, "मैंने दस कोटि रुपये कमाए।"
पूछा जाएगा– "वे दस कोटि कहाँ हैं?" तब हम देखेंगे कि हमारे पास तो एक पाई भी नहीं है। वहाँ तो कुछ भी साथ चलने वाला नहीं है।

प्रथम प्रश्न वहाँ यह पूछा जाएगा– "कौन सी कमाई तुम अपने साथ लेकर आए हो? तुम क्या अर्जित करके आए हो?" पूराने जमाने में जब लोग विदेशों से कमाकर लौटते थे तव पत्नियां उनसे पूछती थीं कि, "क्या लेकर आए हो? जो वहाँ है वह तो हम काम में नहीं ला सकते, परन्तु तुम यहाँ पर क्या लाए हो?"

My child what have you done with your life? यह प्रश्न वहाँ पूछा जाएगा?

"ए सरीरा मेरिया, इस जग में आयकर, क्या तुधु कर्म कमाया?"

मेरे प्रिय बन्धु। यह शरीर है एक अस्त्र। प्रतिदिन आत्मा को इस शरीर के द्वारा कार्य करना है। यह शरीर अब हमारा स्वामी बनकर बैठ गया है और हम इस शरीर के दास बन बैठे हैं। प्रातःकाल उठते हैं। हम प्रथम प्रश्न जो उससे पूछते हैं वह यह कि "आज क्या खाओगे?"

एक दर्वेश होता था। प्रतिदिन अपने आपसे यह प्रश्न करता था, "आज क्या खाओगे?" अपने आप अपने को ही फिर उत्तर देता था, "मृत्यु"। कहते थे आज मृत्यु खाऊँगा। "आज क्या पहनोगे?" "आज कफ़न पहनूँगा।" बस इससे अधिक कुछ पूछते ही नहीं थे। कहता था इससे कौन मुकाबला करेगा? हम भी सबसे पहले अपने आपसे यही प्रश्न करें, "आज क्या खाओगे?" फिर

सोचते जाएँ यह खाऊँगा, वह खाऊँगा। There is no end. "आज क्या पहनोगे?" फिर तो सोच में पड़ जाते हैं। दो तीन घण्टे तो लग जाते हैं। कोन सी साड़ी आज मै निकालूँ? कौन सा matching blause पहनूँगी? कौन सा eye shadow आज मैं आखों की पलकों को लगाँऊ? शरीर हमारा मालिक बन बैठा है? वस्तुत: शरीर स्वामी नहीं है, वह तो एक अस्त्र है, जिसके द्वारा हमें आत्मा को अपना बनाना है।

शरीर तो है तानपुरा, जिस तानपुरे की तार पर आत्मा को गीत गाना है परन्तु शरीर हमारा स्वामी बन बैठा है। हमने ही उसे यह राजकार्य सौंपा है और हम ही इससे यह लौटा कर ले भी सकते हैं। आज ही (order) आज्ञा दे दें उसे कि तुमने व्यवहार ठीक नहीं किया है इस कारण तुम्हें तुम्हारे पद से मुक्त किया जाता है।

मैंने सुना था कि सींगापुर के एक मंत्री थे, उसने कुछ घूस ली। Prime Minister का सगा सम्बन्धी था। Prime Minister को पता चला। एकदम उसने मंत्री को हटा दिया। उससे कहा, "यदि तुम घूस लोगे तो तुम मंत्रिमंण्डल में नहीं रह सकते। तुम हमारे साथ काम नहीं कर सकते। इसी प्रकार यह शरीर भी घूस में फँस गया है। तत्काल उसे पीछे खींच लो। उससे कहो– "तुम स्वामी नहीं हो: तुम तो एक यंत्र हो, तुम तो नौकर हो, तुम्हें [illegible]कार्य करना है, कमाई करनी है।"

"ए सरीरा मेरिया, इस जग में आयकर, क्या तुधु कर्म कमाया?"

प्रतिदिन यह कमाई करनी है। कैसी कमाई? सर्वप्रथम जो कमाई हमें करनी है और जो हम कर सकते हैं, विशेषत: हममें से जो आरम्भकर्ता हैं (beginners) जिनकी अभी आरम्भिक अवस्था है प्रयत्न करके अपने मन में प्रभु के विचार डालें।

Fill your minds with thoughts of God.

इसलिए बार बार तुम्हें प्रार्थना करता हूँ कि प्रात:काल उठो, जब तक किसी न किसी सन्त वाणी अथवा गुरुवाणी, दर्वेशों, फकीरों की वाणी अपने मुख से नहीं उच्चारण करते तब तक आँखें न खोलो। यह उस दिन का सन्देश

है तुम्हारे लिए, इसे लेकर ही बिस्तर से उठो। यह शरीर कभी भी शीघ्र उठना नहीं चाहता। यह शरीर तो चाहता है आलस्य। शरीर तो समझता है कि वह ठाकुर है उससे कहो, "तुम अभी ठाकुर नहीं हो, तुम्हें तो अब खाना पड़ेगा जो मैं तुम्हें खिलाऊँगा"

एक बहिन— सदैव कम मात्रा में खाना चाहिए।

दादा— प्राय: ऐसे ही खाना चाहिए। ऐसा नहीं करना चाहिए कि शरीर को हम बादशाह बना दें। शरीर को सदैव ठीक ठीक मात्रा में खिलाना चाहिए। नहीं तो यदि कभी उसे खारा खाने को मिला तो फिर वह बिगड़ जाता है। यदि किसी दिन उसे फीका खाने को मिला तो कहेगा आज तुमने मुझे दुखी किया है। इसलिए सब बातों की आदत उसे डालनी चाहिए। उससे कहो, सब बातों पर अभ्यस्त रहो। गर्मी और सर्दी का अभ्यास करो, खारे और फीके का अभ्यास करो।

शरीर को घोड़ा कहा गया है। दर्वेश, फ़क़ीर और प्रभु के प्यारे कहते हैं कि शरीर रूपी घोड़े को घास खिलाना है। स्वादिष्ट भोजन उसे नहीं खिलाने हैं। पुराने जमाने में जब किसी दर्वेश को भूख लगती थी तो भोजन नहीं माँगते थे। कहते थे घोड़े को अभी घास चाहिए। उन्हें जो भी मिलता था, कहते थे यह प्रभु का ही प्रसाद है।

सबसे पहली कमाई यह है कि Fill your mind with thoughts of God. प्रभु के सुविचार ही हृदय में रखो। इसलिए कोई न कोई पंक्ति अवश्य स्मरण होनी चाहिए। प्रात:काल उठकर पाँच दस मिन्टों में हाथ मुँह धो कर तैयार होकर मौन बैठना चाहिए। पहले १५ मिन्ट, फिर आधा घण्टा, फिर पौना घण्टा फिर एक घण्टा। धीरे धीरे इस समय को बढ़ाते रहना चाहिए। जब तीन घण्टों तक निरन्तर बैठने का तुम्हें अभ्यास हो जाएगा तब तुम्हें interior Life के अनुभव होने लगेंगे। विचित्र अनुभव। इसके बाद दिनभर जाकर कोई भी कार्य करो। परन्तु ये तीन घण्टे अपने नियमित कार्यक्रम (regular schedule) में से कभी मत लेना। नहीं तो तुम्हारे परिवार वाले तुमसे असन्तुष्ट हो जाएंगे। जो तुम १५-१५ मिन्टों की वृद्धि करते जाओ वह वस्तुत: शीघ्र उठते जाओ।

अब यदि साढ़े पाँच बजे उठते हो तो फिर सवा पाँच बजे उठो। १५ मिन्ट दूसरे तो फिर पाँच बजे उठो। तुम देखोगे कि इन १५ मिन्टों के अभ्यास से तुम्हारे शरीर को अधिक आराम मिलता है। यह आराम तुम्हें १५ मिन्ट अधिक लेटे रहने अथवा सोने से कहीं अधिक लाभदायक है। शरीर को आराम तो चाहिए। यदि बैठने से आराम मिले तो फिर लेटें ही क्यों? फिर धीरे धीरे तुम उस पद तक पहुँचोगे जिस पद पर शरीर केवल एक ही निद्रा का अभ्यस्त हो जाएगा। "एक निद्रा" का अर्थ क्या है? "एक निद्रा" का अर्थ है तुम सो जाओ फिर जिस समय भी आँख खुले उठकर बैठो और अधिक सोने की आवश्यकता नहीं है शरीर को अधिक निद्रा नहीं चाहिए। कभी तुम ११ बजे सोओगे और फिर १ बजे नींद खुल जाए। तुम्हारे शरीर को अधिक निद्रा की आवश्यकता नहीं है। दो घण्टे नींद बहुत है ।

श्री चैतन्य के दो प्रमुख शिष्य रूपम एवं सनातनम, किसी समय एक राजा के प्रमुख मंत्री थे। बादशाह उनसे परामर्श लिए बिना कोई भी कार्य नहीं करता था। उन्हें जब रंग चढ़ता है तो वे चैतन्य के शिष्य होते हैं। कितने ही बरस कहा जाता है वे एक पहर से अधिक नहीं सोये। एक पहर में तीन घण्टे होते हैं। दिन और रात में आठ पहर होते हैं। एक पहर अर्थात् तीन घण्टों से अधिक नहीं सोते थे। कितना समय ध्यान में बिताते थे।

ध्यान से शरीर को अत्याधिक आराम मिलता है। अधिक आवश्यकता ही नहीं होती। फिर तुम एक नींद करना सीखते हो। सोए, आँखें खुली और फिर उठ कर बैठ गये। घड़ी (Clock) की ओर देखोगे तो नहीं उठ पाओगे। घड़ी की ओर मत देखो। इस पद पर जब तक पहुँचो, तब तक कम से कम थोड़ा सा समय बचाकर प्रात:काल के समय मौन में बैठकर जो भी सन्देश तुम्हें मिलता है वह लेकर फिर उठो। उसपर कुछ ध्यान दो। प्रयत्न करके उसदिन के सन्देश एवं उस दिन के सुविचार के एक एक शब्द के अर्थ पर ध्ययान दो। जैसे आज का सन्देश है:-

"ए सरीरा मेरिया, इस जग में आयकर, क्या तुधु कर्म कमाया?"
"ए सरीरा" – तो पहला महत्व इन शब्दों को दिया गया है – "सरीरा" शरीर

क्या है? यह शरीर तो एक यंत्र है, एक साधन है, यह शरीर मेरा ठाकुर नहीं है (साध्य नहीं है)। यह तो हथियार है, इसे मैं हथियार बनाकर ही काम में लाऊँगा। इसलिए आवश्यक है कि यह अच्छी दशा में होना चाहिए। इस शरीर को मै तोडूँगा नहीं, इस शरीर को मैं शुष्क नहीं होने दूँगा (अर्थात् अशक्त नहीं होने दूँगा)। शरीर को ठीक अवस्था में रखूँगा। जैसे हथियार में से कार्य भली भाँति लिया जा सके।

"ए सरीरा" यह शरीर क्या है? इस "शरीर" शब्द पर ही तुम रुके रहोगे, इस एक पर ही यदि तुम सोचते रहोगे तो उस पर ही तुम्हारा बहुत समय लग जाएगा। यह शरीर क्या है? "सरीरं ब्रह्म मन्दिरं" "शरीर है ब्रह्म का मन्दिर"। हम कितने ही मन्दिरों में जाते हैं, परन्तु वास्तविक मन्दिर तो प्रभु ने हमें दे दिया है इस मन्दिर को घण्टियाँ भी हैं। इस मन्दिर के अन्दर घण्टियाँ बजती रहती हैं। परन्तु कष्ट यह है कि तुम इन घण्टियों को सुन नहीं पा रहे हो। इस मन्दिर में ज्योति प्रज्वलित है, परन्तु यह ज्योति तुम देख नहीं पा रहे हो। शरीर की घण्टियों को सुनना है और इस शरीर की ज्योति को देखना है। दो सिद्धान्त जो हैं वे हैं आन्तरिक ध्वनि आन्तरिक ज्योति। (The interior sound and the interior light).

शरीर का विचार करके फिर हम दूसरे शब्द पर आते हैं– "ए सरीरा मेरिया"। तुम मेरे शरीर हो मैं थोड़े ही तुम्हारा हूँ। मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ यह सोचकर कि तुम मेरी सेवा करो और तुम मेरी सहायता करो। जिस कार्य के लिए मैं यहाँ आया हूँ। वह कार्य कौन सा है, जिसमें तुम मेरी सहायता करो? अब तक तुम केवल बाधाएँ ही खड़ी करते रहे हो।

जब हम बच्चे थे तो एक कहानी हमने सुनी थी। एक राजा थे। जब राजा के देहान्त का समय आ पहुँचा तो उनका बालक केवल तीन वर्ष का था। राजा अपने भाई को बुलाकर उससे कहते हैं, "यह बालक मैं तुम्हें सौंप कर जाता हूँ। जब तक यह बड़ा हो तब तक तुम राज्य करना। इसे हर प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण देना जैसे वह कुशल राजा बन सके। जब यह बड़ा हो जाए तब इसे राज्य की बागडोर सौंप देना।" भाई राजा को वचन देता

है कि "जैसे आपने कहा, मैं वैसे ही करूँगा।"

राजा के देहान्त के पश्चात् उनके भाई के मन में कुबुद्धि उत्पन्न होती है। वह बालक को मनोमार्जन (brain wash) कर देता है और उसे रसोई घर में नौकर बनाकर रख देता है। वह बालक बड़ा होता है और समझता है कि वह बावर्ची है और उसे यह ही काम करना है।

कितने ही वर्षों के पश्चात् जब यह बालक बड़ा हो जाता है तब एक अन्य राजा जो उस बालक के पिता का मित्र था वह आता है। सर्वप्रथम वह पता लगाता है कि उसके मित्र के बालक कहाँ है। वह वर्तमान राजा से पूछते हैं कि तुम्हारे भाई का बालक जो उनके देहान्त के समय तीन वर्षों का था वह कहाँ है? वह डर जाता है कि अब उसकी पोल खुल जाएगी। वह भाग जाता है। वह राजा पता लगाकर उस बालक के पास आते हैं जो बावर्ची है। उस बालक से कहते हैं कि तुम बावर्ची नहीं हो तुम तो राजा हो। तुम तो राज्य के उत्तराधिकारी हो। तुम स्वामी हो। तुम डरते क्यों हो?" वह बालक कहता है– "मैं कैसे राजगद्दी पर बैठूँगा?" यह राजा उस बालक को समझाते हैं। राजसिंहासन पर बिठाते हैं और फिर उसे आवश्यक प्रशिक्षण भी देते हैं। हमारी दशा भी वस्तुतः ऐसी ही है। यह शरीर हमारा चाचा है। वह हमारे सिंहासन पर बैठा है। और हमें उसने बावर्ची बना दिया है। अब तुम कितना समय बावर्ची बने रहोगे अथवा बावर्चिनी बनी रहोगी? आज ही उससे कहो:–

"अब हमें वास्तविकता का ज्ञान हो गया है, हमें सारी बात मालूम हो गई है, अब तुम इसी रात यहाँ से कूच कर जाओ।"

"ए सरीरा मेरिया।" इस प्रकार एक एक शब्द पर तुम रुकोगे, तुम्हें न जाने कितनी ही बातें ध्यान में आएँगी। फिर धीरे धीरे इस अभ्यास के पश्चात् ऐसी अवस्था आएगी जिसमें सोच विचार समाप्त हे जाता है। जब हमारे सब विचार एक बिन्दु (point) पर केन्द्रित focus हो आएँगे। इससे हमें बड़ी ही विचित्र शक्ति प्राप्त होगी। देखो सूर्य का प्रकाश, सूर्य के किरण convex lens के द्वारा तुम एक बिन्दु पर एकत्रित करते हो और वहाँ पर यदि तुम कागज रखोगे तो उसे आग लग जाएगी इसलिए उसे burning glass कहा गया है।

वस्तुतः सूर्य के किरणों में जलाने की शक्ति नहीं है। यदि जलाने की शक्ति हो तो फिर हमारे घर, पेड़, पौधे, सब जलकर भस्म हों जाएँ। परन्तु इस काँच के द्वारा हम कितने ही सूर्य के किरणों को एकत्रित करके एक बिन्दु पर ले आते हैं। इससे उनमें विचित्र शक्ति उत्पन्न हो जाती है। मन के विचारों को भी इस प्रकार यदि एक बिंदू पर लाया जाएगा तो फिर तुम्हारे मन की शक्ति खुलेगी। फिर ऐसी अवस्था आती है जब अन्य सब विचार लुप्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् तुम ऐसे स्थान पर पहुँच जाओगे उस पद पर पहुँच जाओगे, जहाँ विचार हैं ही नहीं। अभ्यास के द्वारा एक एक बात सरल हो जाती है।

मैं तब कॉलेज में पढ़ता था। एक दिन कॉलेज जा रहा था तो रास्ते में क्या देखता हूँ कि कोने में दो बड़ी लकड़ियाँ लगी हुई हैं और उनपर रस्सी बँधी हुई है। एक लड़की १४ वर्षों की होगी, वह उस रस्सी पर चल रही थी। मैं आश्चर्य चकित हो गया। सोचने लगा कि यह लड़की इस रस्सी पर कैसे चल पा रही है? मैं रुक गया। मैने सोचा यदि कॉलेज पहुँचने में देर भी हो जाय तो कोई वात नहीं, परन्तु मैं इससे अवश्य पूछूंगा। जब वह वालिका नीचे उतरी तो मैं उसके पास गया और पूछा, "मेरी बहिन! तुम इस रस्सी पर कैसे चल सकती हो?" मुझे उसने एक शब्द में उत्तर दिया, "अभ्यास"। अभ्यास के द्वारा तुम कोई भी कार्य कर सकते हो। गीता में अर्जुन कृष्ण से पूछते हैं, "कृष्ण! मुझे तुम बताओ कि मैं मन को वश मैं कैसे करूँ? तूफ़ान निःसन्देह वेगवान है परन्तु उससे कहीं अधिक वेगवान है मन। इस मन को मैं कैसे वश में करूँ?" श्री कृष्ण कहते हैं:– "दो बातें" यदि तुम करोगे तो मन को तुम वश में रख पाओगे (१) "वैराग्य" (२) "अभ्यास"। वैराग्य का अर्थ है– यह सब जो भी हम देख रहे हैं, या जिसे स्पर्श कर रहे हैं यह सब मिटने वाला है। It's passing, its temporary, it does not abide. फिर उससे मैं अपना सम्बन्ध कैसे रखूँ? जो आज है वह कल नहीं है। गुरू साहब सुखमनी साहब में कहते हैं–

"बटाऊ सिउ जो लावइ नींह, ताकउ हाथ न आवे केह।" कोई यदि यात्री से स्नेह करेगा तो उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

(१) वैराग्य एवं (२) अभ्यास : अभ्यास के द्वारा तुम कुछ भी कर सकते हो। तुम्हें यह शक्ति है। यही है तुम्हारी कमाई।

Fill your mind with thoughts of God! और दूसरी बात जो हमें प्रतिदिन करनी चाहिए वह है: जो भी हो उसे हम स्वीकार करें। हम अपने प्रयत्न करते रहें, इसके बावजूद भी जो कुछ भी हो उसे प्रभु की कृपा समझ कर मान लेना चाहिए। स्वयं को दुखी नहीं करना चाहिए। कहें:— "प्रभु! इसमें हमारी ही भलाई है।" एक और बात भी स्मरण रखना God gives us not what we want, but what we need प्रभु को पता है कि हमें क्या चाहिए। वह हमें जो हमारी आवश्यकता है, वह देता है और न जो हम माँगते हैं। तीसरी बात यह है कि हम किसी न किसी की सहायता करें। सहायता करते रहें। यह शरीर इसलिए मिला है कि हम किसी न किसी की सहायता करते रहें। वाणी (गुरुवाणी) कहती है कि यह शरीर यदि किसी की सेवा नहीं कर सकता तो इससे अच्छा है कि वह शरीर शमशान भूमि में चला जाए। ऐसा शरीर मैं अपने साथ क्यों रखूँ? किसी न किसी की सहायता करो।

एक बहिन— दादा :— आशीर्वाद कीजिए कि हम इन बातों पर अमल करें।

दादा:— ईश्वर करे ऐसा ही करो! जीवन चाहिए, जिन्दगी चाहिए, शब्द नहीं चाहिए। शब्द तो कितने ही बोलते हैं, पर जीवन में उन शब्दों का साक्ष्य चाहिए।

(सिंगापुर : 12-3-1982)

एक सहारा है तुम्हारा मुझे

दादा जी : आज का सुविचार :–

"है एक सहारा तुम्हारा, अलख, अविनाशी!
रखो मुझे अपनी कृपा में, ऐ! ज्योति निवासी!"

प्रभु! मुझे केवल तुम्हारा ही सहारा है, तुम अलख हो। तुम अविनाशी हो। अलख का अर्थ है जो दृष्टि से दूर है। जो अदृश्य हों उसे कैसे जाना जा सकता है। वेद भी 'बेअन्त' कहकर रुक गये। इस एक का सहारा मैंने लिया है।

कई वर्ष पूर्व प्यारे दादाजी (साधू टी. एल. वास्वाणी) से पूना में प्रार्थना की गई कि वे चैतन्य महाप्रभु का चलचित्र देखने चलें। प्यारे दादा जी तो कभी भी चलचित्र नहीं देखने गये। प्यारे दादा जी ने कहा "चलो तो श्री चैतन्य जी की यात्रा पर चलें।" आपमें से कितने ही सत्संगी भाई बहिनें हैं जो भी यह चलचित्र देखने गये थे। उसमें एक दृष्य देखा था जिसका मुझपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। आज तक मुझे उसका स्मरण है। बन्द हुए हैं द्वार सभी, तुम द्वार हृदय के खोल।"

मेरे प्रभु! मेरे समस्त द्वार बन्द हो गये हैं, अब तुम मेरे हृदय के द्वार खोलो। जब हृदय के द्वार खुलते हैं, तब हमें ज्ञात होता है कि मैं कुछ भी नहीं कर सकता। मैं बेबस हूँ। ये कष्ट, ये पीड़ाएँ इसलिए हमारे पास आती हैं कि हमें अभ्यास हो कि हम कितने न बेबस हैं। मैं तो कुछ भी नहीं कर सकता। बहुत ही हाथ पाँव चलाए पर कुछ भी नहीं कर सकता। बेबस! बेबस! जब तक बेबस नहीं हुए हैं तब तक उसका सहारा नहीं लेते। तब तक समझते हैं कि हम सशक्त हैं और ऐसा क्या है जो हम कर नहीं सकते? विशेषत: इस विज्ञान के युग में मनुष्य कहता है, "वह क्या है जो मैं नहीं कर सकता। मैं चन्द्रमा पर पहुँच सका हूँ। मेरे राकेट दूर दूर ग्रहों तक जा पहुँचे हैं। मैंने ऐसे टेलीफोन बनाए हैं जिनके द्वारा जब कोई बात करता है तब वह दूसरी ओर दिखाई देता है कि वह किस प्रकार बात कर रहा है।" हम जब तक इस विचार में हैं तब तक उसका सहारा नहीं ग्रहण करते।

सहारा ग्रहण करने के लिए दूसरी बात जिसकी आवश्यकता है, वह है - न केवल देखते हैं कि हम बेबस है, परन्तु इस सम्पूर्ण संसार में कोई भी नहीं हैं, जो हमारी सहायता कर सके, हमारी रक्षा कर सके, अथवा जिसके पास मैं जा सकूँ। हमें तब आभास होता है कि वह एक ही है। और तीसरी बात यह है कि वह सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिशाली है, सर्व गुणसम्पन्न है और सर्वव्यापी भी है। उसे पाने के लिए मुझे किसी विशेषस्थान पर नहीं जाना है। और न ही नदी के तट पर जाकर उसे पुकारना है। नहीं। वह तो यहीं मेरे सम्मुख बैठा है। केवल उसका ध्यान करना है:

"है एक सहारा तुम्हारा, अलख अविनाशी!
रखो अपनी कृपा में, ऐ! ज्योति निवासी।"

मुझे तुम अपनी कृपा में रखो। मुझे न्याय नहीं चाहिए मुझ कृपा चाहिए। न्याय से मैं मुक्त नहीं हो सकता, मुझ पर कृपा दृष्टि करो।

ध्रुव को यह ज्ञान हुआ था। ध्रुव राजा का ज्येष्ठ पुत्र था। राजा छोटी रानी को अधिक प्यार करते थे। इस छोटी रानी का अपना एक पुत्र था। एक दिन ध्रुव जाकर अपने पिता की गोदी में बैठा। छोटी रानी को यह बात अच्छी नहीं लगी। जाकर उसे हिलाती है और कहती है, "तुम क्या समझते हो? यह गोदी क्या तुम्हारे लिए है? तुम जाकर अपनी माता की गोदी में बैठो।"

ध्रुव को बहुत दुख होता है। माता के पास आता है। उसे कहता है, "मेरे पिता की गोदी मेरे लिए नहीं है? मैं अपने पिता की गोदी में नहीं बैठ सकता?" माता कहती है, "तुम न पिता की ओर देखो और न ही माता की ओर देखो, तुम एक प्रभु की ओर देखो।" ध्रुव तपोवन में जाता है, और यह प्रार्थना बार बार उच्चारण करता है।

"है एक सहारा तुम्हारा, अलख, अविनाशी!
रखो मुझे अपनी कृपा में, ऐ! ज्योति निवासी।"

महर्षि नारद उसके पास आते हैं और उसे एक मंत्र देते हैं :

ॐ नमः भगवते वासुदेवायः
ॐ नमः भगवते वासुदेवायः

यह मंत्र उच्चारित करते करते ध्रुव चेतना खो देता है। उसे दर्शन मिलता

है। चार बाहुओं वाले प्रभु उसके सम्मुख आते हैं। उससे कहते है "माँगो! तुम्हें क्या चाहिए? तुम्हें भाग्य चाहिए? तुम्हें सिंहासन चाहिए?" आया तो सिंहासन माँगने था, परन्तु मंत्र का उच्चारण करते हुए अब उसका हृदय शुद्ध हो गया है।

हमारा हृदय अब कूड़े करकट से भरा हुआ है। इन मंत्रो के द्वारा हमारा हृदय शुद्ध होता जाता है। कितने ही भाई बहिन ऐसे हैं जो कहते हैं, हम मंत्रो का उच्चारण क्यों करें? मंत्रो की क्या आवश्यकता है? वस्तुत: जिस प्रकार कमरे की सफ़ाई झाड़ू लगाकर की जाती है, उसी प्रकार मंत्रो द्वारा तथा नि:स्वार्थ सेवा द्वारा मन के भीतर झाँक कर देखने के साथ साथ एकान्त में बैठकर शान्त वातावरण में ध्यान करने के अलग प्रकार हैं। परन्तु ये सब प्रकार हमारे भीतर के, हमारे अन्त:करण की शुद्धता के लिए हैं। ये अलग अलग प्रकार हमारे साध्य नहीं हैं, अपितु साधन हैं जो हमें अपने लक्ष्य की ओर ले चलते हैं।

ध्रुव का अन्त:करण अब शुद्ध हो गया है। कहता है, "सिंहासन और भाग्य मैं क्या करूगा? मेरे प्रभु! मुझे केवल तुम्हारी आवश्यकता है। और किसी की भी नहीं।"

एक एक भक्त की भी यही पुकार है। भक्त प्रल्हाद राजा का पुत्र है। महल में रहता है। देखता है कोई भी उसका नहीं है। सब उसे कष्ट दे रहे हैं। कहता है, "प्रभु! तुम तो मेरे हो न! फिर कैसे प्रभु स्तंभ में से प्रकट होकर अपने भक्त की रक्षा करते हैं।

हम भी ऐसे ही संसार में रहते हैं, जहां चारों दिशाओं में राक्षस निवास करते हैं। हम अपने राक्षसों को स्वयं उठाकर घूम रहे हैं। वे राक्षस हैं हमारे विकार : काम, क्रोध, मद, मोह, एवं अहंकार। ये राक्षस आकर हमें पकड़ते हैं। उस समय यह पुकार करो:

"है एक सहारा तुम्हारा, अलख अविनाशी!
रखो मुझे अपनी कृपा में, ऐ! ज्योति निवासी।"

जिसे भी यह अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है वह राजकुमार की भांति हो जाता है। उसे मालूम है कि उसकी आवश्यकताएं अपने आप पूर्ण होंगी, चिन्ता नहीं रहती उसे। वह नन्हें बालक की भांति रहता है। बालक जिसे विश्वास है कि उसकी माता सदैव उसके साथ है।

सन् १९१० में प्यारे दादाजी विदेश गये हुए थे। लौटने का समय हो आया। दादाजी के पास भारत लौटने के लिए टिकट के पैसे नहीं थे। उन्होंने आरक्षण करवा रखा था। उन दिनों जहाजों में आरक्षण ऐसे होता था जैसे आजकल बसों में होता है। थोड़े से पैसे देकर आरक्षण करा देते थे। बाकी किराया चढ़ते समय देना पड़ता था। अगले दिन दादाजी का जहाज़ निकलने वाला था और तब तक उनके पास किराये के पैसे नहीं थे। उन दिनों में किराया कम था, केवल ढाई सौ रुपये। किन्तु दादा जी को चिन्ता नहीं थी। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि माता कोई न कोई राह अवश्य निकालेंगी। इसलिए उन्हें चिन्ता नहीं थी।

उन दिनों कूच बिहार की महारानी लंदन में थी। उन्हें पता चला कि दादा जी लंदन में हैं। अपने सचिव से कहा कि, "दादा जी को फ़ोन करके पता करें और यदि दादा जी को समय हो तो उन्हें मेरे साथ जलपान करने के लिए आमन्त्रित करें।" दादा जी को फ़ोन आता है। यह महारानी उस समय वंगाल की सर्वप्रसिद्ध संस्था ब्राह्मो समाज के प्रमुख केशबचंन्द्र सेन की पुत्री थी। दादा जी का उसके साथ मधुर सम्बन्ध था। दादा जी जलपान पर जाते हैं। महारानी जी उनसे कहती हैं, "आज एक बात मेरी मानियेगा?" दादा जी कहते हैं, "पहले बताइये कि क्या बात है?" महारानी जी कहती हैं "मैनें सुना है कि कल आप भारत जा रहे हैं, यदि आप आज्ञा दें तो आपके टिकट के पैसे मैं दे दूँ।" प्यारे दादा जी के अन्त:करण से आवाज़ आती है:

है एक सहारा तुम्हारा, अलख, अविनाशी!
रखो मुझे अपनी कृपा में, ऐ! ज्योति निवासी।

कितना अच्छा हो यदि उपर्युक्त शब्द आज हमारे हृदय के भीतर स्पंदित हों। पग पग पर इन निर्मल शब्दों का उच्चारण करके हमारा जीवन भी एक नया रूप ग्रहण करले। नया होने के लिए केवल एक ही बात की आवश्यकता है। हमारी धारा ऊपर चढ़े। इस समय हमारी धारा नीचे अटक गई है। वह ऊपर की ओर किस प्रकार जाय? किसी न किसी मंत्र का उच्चारण करना होगा। उस मंत्र का उच्चारण करते करते उसमें लीन होना होगा। स्वयं को विस्मृत करके परम पद की प्राप्ति करनी होगी।

(पुणे : 2-8-1985)

"प्रेय" एवं "श्रेय"

दादाजी : आज का सुविचार :–

"जेता समुद्र सागर नीर भरिया, तेते अवगुण हमारे,

दया करो कुछ महर उपाओ, डुबते पत्थर तारे।"

गुरूजी की यह बड़ी मधुर प्रार्थना, है। गुरूजी कहते हैं कि जितना समुद्र में पानी है उतने ही मेरे अवगुण हैं। प्रभु! मुझ पर कृपा करो, मुझ पर दया करो, मैं तो एक डूबते हुए पत्थर के समान हूँ, तैर जाऊँ।

हमारी दशा कैसी है? बार बार डूब जाते हैं। इस संसार रूपी सागर में लहरें उठती हैं हमें घसीट कर ले जाती हैं। उस समय एक है जो हमें बचा सकता है। वह है प्यारा प्रभु!

"दया करो कुछ महर उपाओ डुबते पत्थर तारे।"

हम यदि बैठकर अपने अवगुणों पर विचार करें, यद्यपि विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिस बात का विचार अधिक किया जाता है, उससे ही हम अधिक आकर्षित होते हैं। पर यदि बैठकर विचार करेंगे तो अवगुण अनगिनत होंगें। The list will be endless.

"दया करो कुछ महर उपाओ डुबते पत्थर तारे"

यदि हम दया की माँग करते हैं तो फिर हमें भी चाहिए कि दूसरों पर दया करें। हम दूसरों के अवगुण बहुत ही शीघ्र देखते हैं। किन्तु गुण देखने में हमें बहुत अधिक समय लग जाता है। अवगुण शीघ्र देखते हैं। Forgive us our trespasses, even as we forgive those that trespass against us.

श्री ईशा ने आकर यह प्रार्थना अपने प्रियजनों को दी :– "प्रभु! मेरे अवगुण तुम क्षमा करो, जैसे मैं दूसरों के क्षमा करता हूँ, जो मुझसे ठीक तरह से व्यवहार नहीं करते।" Forgive before forgiveness is asked. That is the law. हम किस प्रकार मन में बैर एवं वैमनस्य रख कर बैठते हैं - अमुक ने मुझसे ऐसे किया और अमुक ने ऐसे किया।

एक नगर में एक सत्पुरुष रहते थे। वहाँ, उस आश्रम में एक व्यक्ति रहता था। जिसने संसार को त्याग दिया था और वे प्रभु को प्राप्त करना चाहता था। उससे कुछ दोष हो गये। कुछ कार्य ऐसे थे जो उसने ठीक नहीं किये। निर्णय किया गया कि तीन लोग आपस में बैठकर उसके दोषों को देखकर अपना निर्णय देंगे। सत्पुरुष को प्रार्थना की गई कि वे उन तीनों में से एक हों। सत्पुरुष जब आए तो कैसे आए? पीठ पर एक टोकरी बाँध कर आए। उस टोकरी में मिट्टी और रेती पड़ी थी। जैसे जैसे वे चलकर आ रहे थे वैसे वैसे रेती उसमें से गिर रही थी। सन्त से जब पूछा गया कि यह आपने क्या किया है? आपने पीठ पर यह टोकरी क्यों बाँधी है? और इस टोकरी में आपने रेती क्यों डाली है? तब सन्त ने कहा : "मैं जा रहा हूँ एक व्यक्ति के अवगुण देखने। मुझे पता ही नहीं है कि मेरे अवगुण इस रेती के समान प्रतिदिन बह रहे हैं?" बोला, "मैं क्या अवगुणों से मुक्त हूँ जो मैं अन्य किसी के अवगुण देखने जा रहा हूँ।" जब दूसरे लोगों ने यह सुना तब वे उनके चरणो में गिर पड़े।

"दया करो कुछ महर उपाओ, डुबते पत्थर तारे।"

एक सत्पुरुष ने अपने प्रिय जनों से कहा कि तुम लोग कैसे काम कर रहे हो? रात्रि के समय लोग कम्बल डाल कर सोते हैं और तुम लोग जाकर इस ठण्ड में उनके कम्बल उतार देते हो।" सब लोग आश्चर्य में पड़ गये। एक दूसरे की ओर देखने लगे। यह कार्य किसने किया? तब सन्त से जाकर पूछा, "महाराज! हो सकता है हम भूल गये हों परन्तु जहाँ तक हमें स्मरण आ रहा है हममें से किसी ने भी यह कार्य नहीं किया है।" तब सन्त ने कहा कि तुम दूसरों के अवगुण खोलते हो। यह कार्य भी ऐसा है कि जाड़े की सर्दी में यदि कोई कम्बल ओढ़कर सो रहा है और तुम जाकर उसका कम्बल उतार दो। **Never expose the faults of others.** तुम तो ढकने वाले बनो दूसरों के अवगुण खोलने वाले नहीं। दूसरों के अवगुण मत देखो।"

"जेता समुद्र सागर नीर भरिया, तेते अवगुण हमारे।
दया करो कुछ महर उपाओ, डुबते पत्थर तारे।"

सागर में देखो कितना पानी है, कितनी बूँदें! उतने ही मेरे अवगुण हैं। गुरु साहब ही ऐसा कहते हैं तो मेरी न जाने क्या दशा होगी।

"दया करो कुछ महर उपाओ, डुबते पत्थर तारे।"

एक प्रभु के प्रियजन बैठे थे। एक व्यक्ति, बहुत ही मोटा तगड़ा आकर उनसे भिक्षा माँगने लगा। उस प्रभु के प्यारे के हृदय में विचार आया कि यह इतना मोटा तगड़ा व्यक्ति भिक्षा माँग रहा है। इससे वह कुछ काम क्यों नहीं करता? उस रात को यह प्रभु का प्यारा एक स्वप्न देखता है। स्वप्न में देखता है कि उसके गुरू उससे कह रहे हैं "यह खाओ, यह खाओ" उस वस्तु पर चादर पड़ी हुई है, जब वह चादर उठाता है तो देखता है कि उससे एक लाश ढकी हुई है। कहता है, "यह मैं कैसे खाऊँगा?" तब गुरू उससे कहते हैं, "तुमने आज क्या खाया?" कहता है, "महाराज, आज मैंने ऐसा कुछ नहीं खाया।" तव गुरु कहते हैं, "आज तुम्हारे पास यह प्रभु के प्रिय आए थे उसके लिए तुम्हारें हृदय में ऐसा विचार आया था कि वह वहुत ही मोटा तगड़ा है, जाकर कमाता क्यों नहीं है? यह है "मुर्दा खाना, किसी के भी अवगुण देखना मुर्दे को खाने के समान है।" गुरू ने पूछा, "तुम्हें मालूम है यह व्यक्ति कोन है? वह व्यक्ति एक बहुत ही ऊँचे पद को प्राप्त है, वह चौबीसों घण्टे प्रभु के ध्यान में बिताता है और नींद तक नहीं करता। आज उसे भूख लगी इसलिए वह तुम्हारे पास आया। वस्तुतः उसकी कमाई के कारण ही तुम्हारा नगर चल रहा है। निःसंदेह रहता तो तपोवन में है परन्तु वहाँ से जो लहरें (vibrations) तुम्हें भेजता है उनसे ही तुम्हारा नगर चल रहा है।" गुरू ने कहा, "यह काम, किसी के अवगुण देखना भी मुर्दा खाने के समान ही है।" हम भी कितनी बार मुर्दे खाते हैं। कितनी बार हम एक दूसरे के अवगुण देखते हैं। फिर उन अवगुणों को जाकर खोल (Expose) देते हैं। नहीं देखते कि हम में कितने अवगुण हैं।

मेरे प्रिय! एक बात का सदैव स्मरण रहे कि जो अवगुण मैं दूसरों में दूखता हूँ, वह तो मुझमें पहले से ही है नहीं तो मैं उसे देखता ही कैसे। यदि मैं पवित्र हूँ तो फिर मैं अपवित्र कैसे देख सकता हूँ। यदि मैं स्वयं सच्चा हूँ

तो फिर मैं दूसरे किसी को झूठा कैसे समझ सकता हूँ।

"जेता समुद्र सागर नीर भरिया तेते अवगुण हमारे,

दया करो कुछ महर उपाओ, डुबते पत्थर तारे।"

हम में से एक एक को दया की अत्यधिक आवश्यकता है। निःसन्देह हम में से कुछ ऐसे हैं जिनकी कमाई इतनी की हुई है कि उन्हें दया की आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं कि अपनी की हुई कमाई पर ही चलेंगे।

एक तपस्वी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने अपना सम्पूर्ण जीवन एक पहाड़ी पर बिता दिया। पहाड़ी के शिखर पर बैठा रहता था। समीप ही एक केले का पेड़ था, जब भी उसे भूख लगती थी वह केले तोड़ कर खा लेता था। किसी भी अन्य व्यक्ति से उसे कोई सम्बन्ध नहीं था। उसका जीवन सुन्दर नामस्मरण में ही व्यतीत होता था। ऐसा बताया गया है कि जब वह व्यक्ति मर जाता है तब उसे धर्मराज के सामने लाया जाता है। धर्मराज उससे पूछते हैं, "तुम्हें न्याय चाहिए अथवा कृपा?" वह कहता है, "कृपा मैं क्या करूँगा? मैंने तो आजीवन ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जो मैं कृपा माँगू। मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन शान्त और नामस्मरण में बिताया है। मैं लोगों से दूर रहा हूँ, मैने किसे भी दुख नहीं दिया है। कृपा दूसरे लोग माँगे जिनका जीवन पाप से रंगा हआ है। मैं कृपा क्यों माँगू? मुझे तो न्याय चाहिए।" दुबारा उससे पूछते हैं, "तुम्हें कृपा चाहिए अथवा न्याय?" पुनः कहता है, "मुझे तो न्याय चाहिए।" तीसरी बार उससे पूछा जाता है, "तुम्हें कृपा चाहिए अथवा न्याय?" फिर भी वह वही उत्तर देता है। धर्मराज ताली बजाते हैं। एक रूप आता है और उसके ऊपर चढ़कर बैठ जाता हैं और वह तपस्वी चिल्लाने लगता है। वह रूप astral form में है, और अत्यधिक भारी है। वह चिल्लाता जाता है। इतने में और भी छोटे छोटे रूप आकर उसे नोंचने लगते हैं, कोई किस ओर से कोई किस ओर से। तब तपस्वी कहता है, "यह क्या है? यह तो न्याय नहीं है?" तब जो बहुत भारी रूप था वह बोला, "मैं पहाड़ी हूँ, तुम कितने ही बरस मुझपर बैठे हो, यदि न्याय होगा तो फिर उतने ही बरस मैं तुम्हारे ऊपर बैठूँगा।" यह बिचारा तपस्वी उस भार के नीचे दबा जा रहा था। और

वे छोटे छोटे रूप कहने लगे कि, "हम केले हैं। इतने बरस इसने हमें खाया है, अब हम इसे खायेंगे।" हज़ारों रूप केलों के आए और कहने लगे, "हम इसे खाएँगे।" यह बिचारा चिल्लाने लगा, "मुझे न्याय नहीं चाहिए मुझे तो कृपा चाहिए।"

"दया करो कुछ महर उपाओ, डुबते पत्थर तारे।" देखिए ऐसे तपस्वियों को भी कृपा की आवश्यकता पड़ी। हम क्या चीज़ हैं? हम कहाँ खड़े हैं? इसलिए दया ही माँगें और दया ही देना सीखें। प्रभु को प्राप्त करने का यह बड़ा ही सुन्दर मार्ग है। दो short cuts हैं: एक है स्नेह का और दूसरा है दया का। दया करो! दया करो! यह मार्ग बहुत ही गतिशील है।

एक व्यक्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह यात्रा पर जा रहा था। उन दिनों में यात्रा के लिए आज जितनी सुविधायें नहीं होती थी। मोटरें, रेलगाड़ियाँ, अथवा हवाई जहाज़ आदि नहीं होते थे। लोग पैदल जाते थे। मार्ग में यदि कोई बैलगाड़ी मिल गई तो उस पर चढ़कर जाते थे, यदि कोई गधा मिल गया तो गधे पर चढ़कर जाते थे, और यदि घोड़ा मिल गया तो घोड़े पर चढ़ जाते थे। जब वह जाने लगा तो उसकी पत्नी ने उसे पकवान, दाल एवं मीठी रोटियाँ बनाकर दी।

यह व्यक्ति वहाँ से गुज़रा जहाँ पर एक कुंआ था। वहाँ एक कुत्तिया थी जिसके सात पिल्ले थे। हर समय वह कुत्तिया कुंए की ओर देख रही थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे वह एवं उसके पिल्ले बहुत ही प्यासे थे। यह व्यक्ति जब वहाँ से गुज़रा तो उसने देखा कि उस कुत्तिया को बहुत ही प्यास है। उसने सोचा कि उसे भूख भी अवश्य होगी। उसने अपने दाल पकवान आदि जो कुछ भी थी वे सब कुत्तिया और उसके पिल्लों के आगे टुकड़े टुकड़े करके रख दिए। वे बिचारे बहुत ही भूखे थे। एकदम खाने लग गये। फिर उस व्यक्ति ने अपनी पगड़ी उतार कर उससे दाल पकवान वाला बर्तन बाँध कर कुंए से पानी निकाला और उनको पीने के लिए दिया जो भी वे शीघ्र समाप्त कर गये। उस व्यक्ति को उन पर बहुत दया आ गई और उसके पास जो बड़ा बर्तन था वह कुंए से भरकर निकाला और उनके पास रख दिया, सोचा मेरे

चले जाने के बाद भी यह पानी उनके काम आयेगा। क्योंकि उसके मन में यह भाव आया कि उसके चले जाने के बाद बे पानी कैसे पी पाएँगे। उसके हृदय में दया का कितना अधिक भाव था! स्वयं को कष्ट में डालकर उन बिचारे dumb, defenceless creatures के लिए सुविधा कर दी। ऐसा करने पर भी उसे कोई ऐसा विचार मन में नहीं आया कि मैंने कोई विशेष कार्य किया। थोड़ा ही आगे चलने पर उसे दर्शन मिलता है। He beholds that darshan आश्चर्य में पड़ जाता है कि उस जैसे को दर्शन कैसे मिला? वह दर्शन से पूछता है, "तुम वस्तुत: दर्शन हो अथवा नहीं? कहीं मैं अपने आप को बिना बात के प्रसन्न कर बैठूँ!" उसने दया की और उसे दर्शन प्राप्त हुआ।

एक दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में बताया जाता है। उन दिनों में कलम होते थे। लकड़ी के कलम होते थे और मोटी उनकी चोंच बनी रहती थी। कलम की दों फाँके होती थी उसमें कुछ अटक गया था। उसे निकालने के लिए उसने कलम को थोड़ा झटका। ऐसा करने से कलम की स्याही उड़कर उसके नाखून पर आ गिरी और गिरते ही उस स्याही पर एक मखी आकर बैठी। पहले उसके मन में विचार आया कि वह मखी को भगा दे, परन्तु फिर उसने सोचा मखी स्याही पीना चाहती है, इसलिए वह स्याही पीले तब बाद में वह अपना काम करेगा। मखी ने जब स्याही पी ली तब उसने लिखना प्रारम्भ किया। कहते हैं कि for this single act of compassion of mercy उसे वह प्राप्त हुआ जो हमें वर्षों की तपस्या के पश्चात् भी प्राप्त नहीं होता है क्योंकि, उसने दया की!

तुम मुझसे पूछते रहते हो कि, "हम माँस खाएँ?" परन्तु यह है compassion. दया करो!

"जेता समुद्र सागर नीर भरिया, तेते अवगुण हमारे दया करो कुछ महर उपाओ, डुबते पत्थर तारे।"

एक प्यासी : दादा, लालच का सामना कैसे किया जाए?

दादा : हम लालच का प्रतिरोध resist करते हैं। लालचें आती क्यों हैं? कितने ही पूछते हैं कि यदि इस जीवन का उद्देश्य प्रभु को प्राप्त करना है तो

फिर प्रभु ने इतने प्रलोभन क्यों पैदा किये हैं? प्रलोभन आते हैं हमारी भलाई के लिए। प्रलोभन शब्द Temptation is derived from the Latin word temtare means to strengthen, to draw your inner strangth.

एक एक प्रलोभन इसलिए आता है कि उसका प्रतिरोध (resist) करके मेरे भीतर जो गुप्त शक्ति है उसे खोलूँ। जैसे मैं उन्हें resist करता हूँ, मेरे भीतर की शक्ति खुलती जाती है। इसलिए आत्मसंयम को बहुत ही महत्व दिया गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार ब्रह्मचर्य एवं आत्मसंयम से हमारे भीतर की शक्ति खुलती जाती है । हमारे भीतर पवित्रता बढ़ती चली जाती है। फिर ऐसी अवस्था आती है कि प्रभु के नाम के अतिरिक्त और कुछ भी मीठा नहीं लगता।

उपनिषदों में ऋषि अपने शिष्यों को दो शब्द सिखाते हैं : "प्रेय" एवं "श्रेय"। "प्रेय" है वह जिससे आनन्द प्राप्त हो और "श्रेय" है कल्याण मार्ग जिससे लाभ की प्राप्ति हो। ऋषि शिष्यों से पूछते हैं, "तुम क्या लेना चाहोगे?"

जातका आख्यानों (Jataka tales) में एक बहुत ही मधुर आख्यान दिया हुआ है। गौतम बुद्ध को पूर्व जन्म का दर्शन मिलता है। उनका वर्णन वे स्वयं करते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं: बोधिसत्व को एक पुत्र था ब्रह्मदत्त। ब्रह्मदत्त ने पिता से कहा कि वह अब बड़ा हो गया है और उसे अब सम्पत्ति में से अपना हिस्सा चाहिए। पिता ने उससे कहा, "तुम सम्पत्ति से अपना हिस्सा तो ले रहे हो परन्तु अब तुम्हें अलग रहना पड़ेगा। अब तक तुम यहाँ रहते थे तो मैं तुम्हें कुछ control में रखकर बैठा हुआ था। अलग होने पर तुम्हें कौन नियंत्रण करेगा।" ब्रह्मदत्त ने कहा, "मैं जो बैठा हूँ। क्या मैं अपने आप को वश में नहीं कर सकता?" पिता बोले, "मैं समझता हूँ अब तक नहीं।" ब्रह्मदत्त ने पिता का कहना नहीं माना। जायदाद से अपना हिस्सा लेकर अलग हो गया। जायदाद तो मिल गई परन्तु उसके साथ और सब बातें भी आ गई। शराब आया, जूआ आई, यह तो नियम है जायदाद का। थोड़े ही समय में उसने अपनी शक्ति क्षीण कर ली। पैसा एवं पदार्थ भी समाप्त कर दिये। एक कौड़ी भी नही बची उसके पास। अब क्या करे? पहले उसके पीछे मित्रमंडली

घूमती थी अब उसे कोई पूछने वाला भी नहीं है। उसे आता हुआ देखते थे तो उसके मित्र दूसरी ओर मुँह फेर लेते थे सोचते थे कहीं वह उनसे एक सिग्रेट न माँग ले। उसे क्यों दें? वैसे तो उन्होंने उससे न जानें क्या क्या लिया था।

ब्रह्मदत्त ने देखा कि अब तो कोई भी उसकी ओर नहीं देखता है। अन्त में वह लौट कर पिता के ही पास आता है। सोचता है आखिर मेरे पिता हैं उन्हें अवश्य मुझ पर दया आएगी। पिता के पास आकर कहता है, "मेरी ऐसी देशा हो गई है, आप मुझ पर दया कीजिए।" पिता उससे कहते हैं, "मैं तुम्हें एक प्याला देता हूँ जब तक तुम्हारे पास यह प्याला रहेगा तुम्हारे पास पैसा भी होगा और तुम्हारा भाग्य भी तुम्हारा साथ देगा। परन्तु इस प्याले की तुम अच्छी तरह संभाल करना। यदि यह प्याला खो गया अथवा टूट गया तो फिर तुम्हारी ये ही दशा हो जाएगी।" ब्रह्मदत्त बहुत ही प्रसन्न हो गया That cup ws the cup of selffcontrol. The more he controlled himself, the greater his wealth increased, his happiness increased.

जैसे जैसे उसने उस प्याले को संभाल कर रखा, वैसे वैसे अधिक धनी बनता गया। जो selfcontrol का व्यक्ति होता है वह "श्रेय" के मार्ग से चलना आरम्भ करता है। पहले वह "प्रेय" के मार्ग से चला था। जैसे "श्रेय" के मार्ग से चलता था उसे सुख एवं आनंद की प्राप्ति होती गई इसके अतिरिक्त उसे अच्छा स्वास्थ्य भी मिला और सब कुछ मिला। अब जब से सब कुछ मिलने लगा तो उसके पूर्व के संस्कार फिर उभरने लगे। फिर desolate life प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह निकला कि वह भूल गया कि उसे कोई प्याला भी था। एक दिन प्याले को हाथ लग गया, प्याला गिर पड़ा और टूट गया टुकड़े टुकड़े हो गया। यह सब इस कारण हुआ कि वह आत्मसंयम selfcontrol का जीवन नहीं जी रहा था। फिर उसकी वही दशा हो गई।

विचारा बहुत ही रोया, बेहद रोया। और कहने लगा, "मुझे पिता ने अवसर दिया, मैंने वह अवसर भी खो दिया।

इस बात से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब हम "प्रेय" के मार्ग पर

चलते हैं तो हमारी दशा कैसी होती है।

तुम किस राह पर चलना चाहते हो? प्रेय अथवा श्रेय? हर कदम पर यह choice तुम पर निर्भर करता है।

एक सज्जन : दादा! आपको बचपन से कभी "प्रेय" का मार्ग भी मिला अथवा आरंभ से ही केवल "श्रेय" का मार्ग ही मिला है?

दादा : क्यों नहीं मेरे सामने भी प्रेय का मार्ग आया! वस्तुतः इसी कारण मैं समझ सकता हूँ।

एक बहिन : दादा! कल हम में से कुछ बहिनों ने प्रण किया है कि वे दहेज नहीं लेंगी। परन्तु माया बहुत ही प्रबल है, माया लालच में डाल देती है। इसलिए हमें आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है। आप हर कदम पर हमें शक्ति प्रदान करते रहिए।

दादा : कल तुम लोगों ने यह बहुत अच्छा किया जो तुम बहिनों ने प्रण किया कि तुम दहेज से दूर रहोगी। और सादगी से विवाह कराओगी। इस लहर को यदि तुम शुरू करो तो तुम्हें बहुत ही आशिर्वाद मिलेगा। हम बराबरी के चक्कर में ही रहते हैं। अमुक ने पार्टी में एक लाख खर्चा किया मैं दो लाख खर्चा करूँगी कुछ फ़र्क नहीं पड़ेगा। तुम्हें दो लाख खर्च करने से कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा परन्तु बिचारे मध्यमवर्गीय लोगों का क्या होगा? वे कहाँ जाएँ? उनके लिए बड़ा कष्ट है।

एक सज्जन : परन्तु दादा! यदि पैसे वाला खर्चा नहीं करता तो कहा जाता है कि वह कंजूस है।

दादा : यदि तुम अपने आगे यही आदर्श रखोगे तो ऐसा नहीं होगा। ऐसी ही स्थिती सिन्ध में भी धनि लोगों की होती थी। फिर एक अमीर आदमी ने कहा मैं उदाहरण प्रस्तुत करूँगा। अपने बेटे को बोला कि तुम्हें विवाह में खादी के ही वस्त्र पहनने हैं। उस अमीर आदमी ने कँजूस के इल्ज़ाम से बचने के लिए क्या किया? जो एक लाख रुपये अथवा जितना भी विवाह में खर्चा करना था उतने पैसे उसने ग़रीब कन्याओं के विवाह में खर्च के लिए दान कर दिये। इस लिए उसे किसी ने भी कंजूस नहीं कहा। तुम भी क्यों नहीं अपने

डालर निकालो, पर दो शुभ कार्यों में, और दान करो। जो भी तुम दान करते हो अथवा शुभ कार्यों में देते हो वही वस्तुत: तुम्हारी बचत है। तुम जब वहाँ चलोगे और देखोगे तो transfer केवल यही amount होंगे, जो तुम लोगों ने शुभ कार्यों में, अथवा दान में यहाँ दिये हैं। यही तुम्हारी वास्तविक बचत है बाकी तो तुम्हारे बच्चे ले जाएँगे। फिर वे न जाने उसे क्या करें? इसके अलावा अब जो भी तुम अपने ऊपर खर्च करते हो वह भी व्यर्थ जा रहा है और तुमसे खिसक जा रहा है। What I spent, I no longer have. What I saved, I lost. What I gave in the service of good causes that I have. That's my saving.

यहीं पर "प्रेय" एवं "श्रेय" का प्रवचन उठता है। दहेज है "प्रेय" का मार्ग। मैं लूँ, कितनी मिठाइयाँ मिलती हैं, कितने फल मिलते हैं और भी न जाने कितनी वस्तुएँ मिलती हैं। पर "श्रेय" वाला व्यक्ति यह सब वस्तुएँ ग्रहण नहीं करेगा।

मुझसे किसी ने पूछा, "यदि कुछ माता पिता विवाह के समय अपनी बेटी को देना चाहते हैं, बेटी वह ले अथवा नहीं?" प्रयत्न यह किया जाय कि विवाह के समय न दिया जाय। परन्तु विवाह के पश्चात् यदि बालिका अपने घर से कुछ ले आए तो इसमें कोई आपति नहीं है। माता पिता के लिए यह स्वाभाविक है कि वे अपनी सन्तान को कुछ दें। परन्तु इसमें किसी लोभ की बात नहीं होनी चाहिए।

तुम तो ऐसे उदाहरण वनो कि साड़ी भी अपनी ही भेजो। उसे कहो, तुम हमारे पास आ रही हो, साड़ी भी यही पहन कर आओ। मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई जब तुम में से कितनों ने "श्रेय" का मार्ग अपनाया।

(हाँग काँग 16-4-82)

सत्संग की महिमा

दादा : आज का सुविचार -

"मन मेरा पंखी भया, उड़ चला आकाश;

स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहब संगत के पास।"

मेरा मन पंछी हो गया, ईश्वर की खोज में सीधा ही सीधा, स्वर्ग में पदार्पण कर गया। और बोला, "स्वर्गलोक में तो प्रभु है ही नहीं।" "तब प्रभु कहाँ है?" कहा, "प्रभु है सत्संग में, जहां भक्तजन एकत्रित होकर प्रभु का स्मरण करते हैं, प्यारे प्रभु को पुकारते हैं, वहीं साहब रमता है। स्वर्ग में प्रभु नहीं है, परन्तु वह है सत्संग में, जहां नाम का स्मरण होता है।" सोई सत्संग आखिये, जित एको नाम सालाह (उसे ही संगत कहिये, जहां पर एक नाम की ही महिमा होती है।)

जहां पर एक ही नाम की महिमा होती है, और अन्य कोई बात नहीं है : केवल एक नाम का ही स्मरण है। देखो! कृष्ण अन्तर्धान (अलोप) हो गया। गोपियों को अन्य कोई बात अच्छी नहीं लगती थी। केवल श्याम! श्याम! श्याम! संगत वही जहां केवल नाम! नाम! नाम! अभी समय आ गया है फिर हम कैसी कैसी बातों में अपना समय व्यर्थ गंवा रहे हैं। परन्तु अब समय आया है और हम खड़े हैं किनारे की अन्तिम सीढ़ी पर।

"मन मेरा पंखी भया, उड़ चला आकाश"

सत्संग की बहुत महिमा है, वशिष्ट और विश्वामित्र के बीच एक दिन वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। विश्वामित्र ने कहा कि जो कुछ भी है वह तपस्या में है। अपनी तपस्या की शक्ति के द्वार खोलो। वास्तविक शक्ति तो तपस्या में हैं। वशिष्ट ने कहा कि जो कुछ भी है वह सत्संग में जहां सत्य की महिमा है, वहीं सत्संग है। ऐसा नहीं कि केवल नाम मात्र में सत्संग हो और भीतर बैठकर सांसारिक विषयों पर वार्तालाप हो। सत्संग का अर्थ है सत्य का संग (साथ) जहां सत्य के अतिरिक्त और कोई बात न हो। सत्संग का द्वार लोहे का द्वारा होता है, जहां द्वारपाल लाठी लेकर खड़ा रहता है। संसार को कहता

है कि ए संसार! यहां पर द्वारपाल लाठी लेकर खड़ा है, यदि तुमने भीत
जाने का प्रयत्न किया तो लाठियां खानी पड़ेगी। तुम बाहर ही खड़े रहो। भीत
है केवल सत्य, - इक नाम, इक श्याम, इक राम, इक प्रेम, इक भक्ति

उन दोनों में वाद-विवाद हुआ। विश्वामित्र ने कहा कि जो कुछ भी
वह तपोशक्ति में और वशिष्ट ने कहा कि जो कुछ भी है वह सत्य शक्ति
में। अब निर्णय कौन करें? अन्ततोगतवा वे पृथ्वी के पास निर्णय के लि
गये। हमारे शास्त्रों के अनुसार पृथ्वी बैल पर खड़ी है "धरत धवल दया
पूत।" गुरुजन फ़रमाते हैं कि धरती धवल पर खड़ी है और धवल है बै
गुरुजन बताते हैं कि यह बैल क्या है? बैल है दया का पुत्र "दया का पू
ऋषियों ने निर्णय किया कि चलकर इस बैल से पुछते हैं कि सत्संग
अधिक शक्ति है या तपस्या में अधिक शक्ति है।

विश्वामित्र आया और आकर कहा, "इस प्रकार हमारा वाद-विवाद हु
है, तुम हमारा निर्णय करो! बैल वोला, "मैं तुम्हारा निर्णय तब करुंगा
तुम मेरा भार कुछ समय के लिए अपने ऊपर लोगे, जैसे मुझे कुछ समय सोच
के लिए मिल जाय।" विश्वामित्र ने कहा मैं उठाता हूँ तुम कुछ समय निश्चि
हो कर सोचो और फिर निर्णय दो।"

विश्वामित्र ने कहा, "अब तक मैंने जितनी भी तपस्या की है वह
मैं अर्पण करता हूँ, ताकि मुझे शक्ति मिले कि मैं पृथ्वी का भार अपने ऊ
उठा सकूँ।" मैं पृथ्वी का भार अपने ऊपर लेता हूँ। वह दो या तीन क्षण
उठाता है कि वह चिल्लाता है, "मरता हूँ! मरता हूँ! मेरी समस्त शक्ति न
हो गई, मैं और अधिक समय भार नहीं उठा सकता।"

तब बैल ने वशिष्ट से कहा। वशिष्ट बोला, "अब तक मैंने जितना
संग किया है, उस में से केवल दो पलों का सत्संग, उससे जो शक्ति मुझे मि
है, वह मैं अर्पण करता हूँ और पृथ्वी को उठाता हूँ।" इतना कहकर उ
पृथ्वी को उठाया और खड़ा रहा।

तब विश्वामित्र ने बैल से कहा कि यह पृथ्वी उठाकर खड़ा है और तु
कोई निर्णय नहीं दिया है? शीघ्र ही निर्णय सुनाओ।" बैल ने उत्तर दिया, "नि

ो हो गया। तुमने जो स्वयं देखा।" विश्वामित्र ने कहा, "मैने कौन सा निर्णय खा? तुम बताओ?" बोला, "तुमने अपनी समस्त तपोशक्ति दी। तुम पृथ्वी उठा सके। इसने केवल दो पल की शक्ति दी है और अब तक उठाकर ड़ा है। इस को तो न मालूम कितनी शक्ति है। इसने न मालूम कितना सत्संग माया है।"

शास्त्रों में सत्संग की अत्यधिक महिमा है। साहब संगत के पास।" तुम जाने कहां कहां जाकर प्रभु की खोज करते हो।

"मन मेरा पंखी भया, उड़ चला आकाश ।"

हम भी बहुत भटकते हैं : प्रभु कहां है? यहां है? वहां है? परन्तु प्रभु ो सत्संग में ही है! तुम एक गीत गाते हो, जिसमें प्रभु नारद से कहते है:-

"हे नारद। मैं वहीं निवास करता हूँ, जहां मेरे भक्तजन भक्ति में मदहोश ोकर मस्ती में स्वयं को खोकर मेरा नामस्मरण करते हैं, वहां आकर मैं नृत्य रता हूँ।" "The Lord Himself comes and dances." नाम का गान करो, वयं का विस्मरण करो। उत्साह में भरकर गाओ। हम कीर्तन करते हैं, मुख ोलकर तुम गाओ। स्वयं का विस्मरण करो; फिर देखो तुम्हें कितने आनन्द ी प्राप्ति होती है। न केवल आनन्द परन्तु शक्ति भी। यह जीवन जिसमें हम , अन्यथा कोई भी बात हमें आकर्षित कर लेती है। हमें इतनी शक्ति हो के हम पर्वत की भांति हो जायँ। We should stand firm as a rock. परन्तु क छोटी सी लहर आती है और हमें खींच ले जाती है।

"मन मेरा पंखी भया, उड़ चला आकाश,
स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहब संगत के पास।"

इसलिए, संगत का सदैव सम्मान करो, क्योंकि संगत में साहब बैठा है। ौर संगत का चिन्ह यह है कि एक बहिन कुछ कहे और दूसरी बहिन कहे हां" किसी भी बात पर कोई कलह नहीं। संगत का अर्थ है प्रेम। और ऐसा ो नहीं है कि केवल मुझे प्रेम मिले, परन्तु मैं भी प्रेम दूँ। प्रेम दूंगा और प्रेम पने आप मिल जायेगा। परन्तु यदि मैं कहूँगा कि सब मुझे प्यार करें, मुझे ो कोई प्यार नहीं करता इस का अर्थ है कि मैं प्यार करना नहीं सीखा।

एक बहिन ने कहा कि यात्रा (दौरे) पर कितनी ही बहिनें जाती हैं
कभी कोई एक भी पत्र ही नहीं लिखती। मैने पूछा, "तुमने कभी किसे लिखा
है?" बोली "मैंने तो नहीं लिखा है।" "मेरी बहिन यदि तुम नहीं लिखोगी
तो दूसरा कौन लिखेगा" पहले स्वयं से आरम्भ करो, उम्मीद न करो, परन्
देना सीखो। देकर फिर भूल जाओ। देते जाओ, देते जाओ, स्वत: ही लौटक
मिलेगा। ईश्वर करे ऐसी संगत बने। पर बनायेगा वह स्वयं। मनुष्य क्या क
सकता है?

सच्ची संगत वहां पर है जिसमें हम एक दुसरे के लिए त्याग करें। उ
संगत में ईश्वर स्वयं आकर निवास करते हैं। यदि नहीं फिर भी ईश्वर आ
हैं: झलक दिखाकर चले जाते हैं।

"मन मेरा पंखी भया, उड़ चला आकाश,"
स्वर्गलोक खाली पड़ा, साहब संगत के पास।"

ऐसी संगत देखी कलकता में, श्री चैतन्य के भक्त थे। आयु में
वड़े थे, परन्तु एक दुसरे के लिए शीश त्यागने के लिए सदैव तैयार। जब मिलक
प्रभु का नाम उच्चारण करते थे, तब उन की आँखों से अश्रुधारा बहने लग
थी।

एक संगत होती है जिसमें एक दूसरे से पूछता है कि तुमने मेरे लि
क्या किया? दूसरी संगत होती है जिसमें प्रभु आते हैं, उसमें प्रत्येक स्वयं
पूछता है कि मैंने संगत के लिए क्या किया? कुछ तो करूँ! समय बीतता
रहा है, किसी समय भी घण्टा बज सकता है। कुछ तो उनके लिए करूँ। कु
तो उनकी सेवा करूँ। कुछ तो आशीर्वाद उनका प्राप्त करूँ।

"मन मेरा पंखी भया, उड़ चला आकाश,
स्वर्गलोक खाली पड़ा, साहब संगत के पास।"

(पुणे ३१.८.१९८

प्रभु को प्राप्त करने का मार्ग

दादा : आज का सुविचार :

"कई कोटि दर्शन प्रभु प्यास,

तिन कउ मिलयो प्रभु अबिनास।"

यह पद श्री सुखमनी साहब में से है। गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं:- कितने हैं जिनके हृदय में प्रभु के लिए प्यास है, उत्कंठा है। वे एक दिन जाकर प्रभु को प्राप्त करते हैं। कितने ही मार्ग हैं जो प्रभु के पास ले चलते हैं। परन्तु इस युग के लिए संतों ने एक सरल मार्ग बताया है। जिसके द्वारा हम तीव्र गति से प्रभु को प्राप्त कर सकते हैंshort-cut to God. हमें कहीं जाना होता है तो हम short-cuts खोजते हैं, जैसे अधिक न चलना पड़े, अब तो तुम पैदल चलते ही नहीं हो। तुम्हारे पास गाड़िया ही गाड़िया हैं, जब पैदल चलना होता है तव सोचते हैं कि कोई short-cut हो तो शीघ्र ही जा पहुँचें। संतों ने आकर हमें short-cut वताया है, वह है प्यास का मार्ग। इस कारण हृदय में आवश्यकता उत्पन्न करो, जिसके हृदय में आवश्यकता उत्पन्न होती है उसके पास प्रभु स्वयं आते हैं। जिसे वेद उपनिषद् नहीं पहुँच सकते, वह प्रभु स्वयं उसके हृदय में आता हैं जिस हृदय को उसकी आवश्यकता है।

सन्त रामकृष्ण के पास नरेन्द्र आता है। हम अव उसे स्वामी विवेकानन्द कह कर पुकारते हैं। नरेन्द्र के हृदय के भीतर खोज थी प्रभु है या नहीं? सव 'प्रभु' 'प्रभु' तो कहते हैं किन्तु वह है या है ही नहीं। यदि है तो ऐसा कोई व्यक्ति है जिसने उस के साथ वार्तालाप किया है, जो उससे मिला है, जिसने उसके साथ भ्रमण किया है? फिर एक स्थान से दूसरे स्थान पर और दूसरे स्थान से तीसरे स्थान जाता है। अन्ततोगतवा सन्त रामकृष्ण के पास आता है। इससे सीधा यह प्रश्न करता है, "तुमने प्रभु को देखा है?" तुम 'प्रभु' 'प्रभु' कर रहे हो, "तुमने प्रभु को देखा है?" सन्त उत्तर देते हैं कि "जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ, उससे कहीं अधिक स्पष्ट मैं ईश्वर को देख रहा हूँ।" नरेन्द्र आश्चर्य-चकित हो जाता है, और मन में सोचता है, "कहीं यह मुझ से झूठ तो नहीं

बोल रहा है, मुझे निश्चय तब होगा जब मैं स्वयं प्रभु के दर्शन करूंगा। तब फिर प्रश्न करता है, "मैं प्रभु का दर्शन कर सकता हूँ?" सन्त उसे कहते हैं, "एक एक जो मनुष्य का जन्म लेकर आया है, वह प्रभु का दर्शन कर सकता है।" फिर कुछ पल रुक कर सन्त बहुत ही मीठे वचन कहते हैं:– "पुरुष स्त्रियों के लिए कटोरे भर भर कर आँसू बहाते हैं, स्त्रियां पुरुषों के लिए कटोरे भर भर कर आँसू बहाती हैं, लड़के लड़कियों के लिए और लड़कियाँ लड़कों के लिए कटोरे आँसुओं के बहाती हैं, परन्तु वे कहाँ जो प्यारे प्रभु की प्यास में आँसू बहायें?" जो प्रभु के प्यास में आँसू बहाता है सन्त कहते हैं, वह ईश्वर को प्राप्त करता है।

हममें से एक एक को कोई न कोई प्यास है। ऐसा नहीं है कि हमें प्यास का अनुभव नहीं है। एक मनुष्य मुझे मिला, बोला मुझे प्यास है मांस की, मुझे यदि मांस के टुकड़े न मिलें तो मैं समझने लगता हूँ कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। देखो मांस के टुकड़ों के लिए भूख होती है, प्यास होती है, स्त्री भोग के लिए, इंन्द्रिय भोग के लिए कितनों को ही प्यास होती है। मान अथवा यश के लिए कितनों को भूख होती है, यहाँ विदेश का मुझे ज्ञान नहीं है, परन्तु भारत में लाखों रुपये खर्च करते हैं कि उन्हें विधानसभा अथवा नगरपालिका में सदस्यता मिले। कितनों को अत्यधिक प्यास होती है पदार्थ एवं लाख करोड़ एकत्रित करने की। इस प्यास का मुख थोड़ा बदिलें ईश्वर की ओर, कहें "प्रभु! प्रभु! मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुम्हारे मुख कमल के अतिरिक्त, तुम्हारे मधुर मुखड़े के अतिरिक्त मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।" जब प्रभु को विश्वास हो जाता है कि हमारे शब्द केवल शबद नहीं है, परन्तु उन शब्दों के भीतर हृदय की भावना छिपी है, तब प्रभु स्वयं आते हैं और दर्शन देते हैं।

"कई कोटि दर्शन प्रभु प्यास,
तिन कउ मिलयो प्रभु अबिनास।"

The eternal God, He comes himself to those that have created a need for Him in their lives.

प्रभु मिला तो सब कुछ मिला, पर प्रभु नहीं मिला तो कुछ नही मिला।

"संसार का सर्वस्व प्राप्त हुआ,

पर यदि प्रभु नहीं मिला, तो क्या मिला?

कुछ नहीं मिला, कुछ नहीं मिला।"

प्रभु मुझे अपने चरण कमलों की प्यास दे। नारद को ईश्वर ने कहा, "तुम मांगो। तुम मेरी इतनी सेवा करते हो, तुम तीनों लोकों में जाकर "भज मन नारायण!" "भज मन नारायण!" का कीर्तन करते हो। "तुम मांगो जो तुम्हें चाहिए।" नारद कहता है "प्रभु! मैं आप से क्या माँगू? आपने मुझे सब कुछ पहले ही दे दिया है। मेरे मांगने से पहले ही तुम मेरी आवश्यकता पूरी कर देते हो। फिर भी प्रभु उसे आग्रह करते हैं "कुछ मुझ से मांगो। मुझे प्रसन्नता होगी कि मेरे प्यारे ने मुझ से कुछ मांगा।" नारद पांच मिनट मौन रहता है। फिर बहुत ही मधुर स्वर में प्रभु से प्रार्थना करता है। यह प्रार्थना मैंने पता नहीं कितनी बार की होगी और तुम लोग भी करो तो बहुत अच्छा है। बहुत ही मधुर प्रार्थना है। इस प्रार्थना में नारद जी कहते हैं:–

"O Lord! grant me pure love and devotion for Thy Lotus feet and so bless me that this world bewitching Maya may not lead me astray!"

कहता है, "प्रभु! मैं तुमसे यह भीख मांगता हूँ कि तुम मुझे अपने कमल चरणों के लिए विशुद्ध भक्ति, विशुद्ध प्रेम दो, और मुझे आशिर्वाद दो कि यह मोहनी माया जिसने सब को बाँधकर रखा है, जो सब का पथभ्रष्ट कर रही है, मुझे पथ भ्रष्ट न करे। तुम्हारी छाया के नीचे मैं सदैव सदैव रहूँ।"

माया भिन्न-भिन्न रूप धारण करके हमें पथ भ्रष्ट करती है। माया का एक रूप "कंचन" अर्थात् पैसा और पदार्थ है। किस प्रकार समस्त सृष्टि पैसे से बन्धी हुई है। यह जो आधुनिक सभ्यता है, उस का एक चिन्ह यह भी है Economic interpretation of history अब कहा जाता है कि :- इतिहास बनता है पैसे एवं पदार्थ से। जो धनी हैं वे ही इतिहास बनाते हैं। This is the economic interpretation of history प्राचीन समय में कहा जाता था कि जो त्याग करते हैं, जिनके हृदय में विचित्र भावनायें उत्पन्न होती हैं, वे ही इतिहास बनातें हैं। पर अब कहा जाता है कि इतिहास वे बनाते है जिसके पास पैसा एवं पदार्थ है। सारे संसार को माया का यह रुप बांध कर बैठा है। भाग्यशाली वह है जो पैसे को तुच्छ समझता है, उसे जो भी मिलता है वह

स्वीकार करता है। न मिलने पर भी कहता है प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो। और वास्तविकता तो यह है कि आता तो वही है जो उस की इच्छा है। हम कितने भी प्रयत्न करें। पर होगा वही जो ईश्वर की इच्छा होगी। इसी कारण सत्पुरुष कहते हैं जिस बात के लिए तुम्हें यत्न करना नहीं है, उसके लिये तुम कितने यत्न करते हो, और जिस बात के लिए तुम्हें यत्न करना चाहिए उस बात के लिए तुम यत्न करते नही हो। पैसे एवं पदार्थ के लिए यत्न करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु जिस पदार्थ के लिए यत्न करना हैं वह है उस परम पद की प्राप्ति, और उसके लिए हम प्रयत्न करते ही नहीं हैं। कहते हैं:- "जैसी ईश्वर की इच्छा।" व्यक्ति वह जो परिश्रम करे। आत्मिक परिश्रम ही परिश्रम है। यह परिश्रम है :-

"कई कोटि दर्शन प्रभु प्यास,
तिन कउ मिलयो प्रभु अबिनास।"

यह प्यास हमारे हृदय के भीतर उत्पन्न हो। जिन्हें हृदय में प्यास है उन की आंखें अलग ही दिखती हैं। His eyes rest on for away vision जैसे कहीं दूर बहुत दूर देख रहीं हों।

तीन भक्त थे। उनकी स्त्रियां एक बार आपस में मिलीं। भक्त वही जिसके हृदय में प्यास है। उन स्त्रियों ने आपस में बातचीत की। एक ने कहा :- मेरा पति तो ऐसा है कि उन्हें कुछ पता ही नहीं रहता। दूसरी स्त्रियों ने उससे पूछा "कैसे?" उसने उत्तर दिया, "प्रतिदिन प्रातःकाल जब वह स्नान करके आते हैं, मैं उसके लिए कुर्सी बनाकर रखती हूँ, जिस पर बैठकर वे पूजा पाठ करते हैं। एक दिन मैं कुर्सी बनाकर रखती हूँ वहां एक windowssill था। उन्होंने समझा वह कुर्सी है और उसी पर बैठ गये। भक्ति करने लगे तो गिर गये उन्हे कुछ पता ही नहीं चला। देखती हूँ तो वे नीचे गिरे पड़े थे। तब मुझे ध्यान आया कि आज तो मैंने कुर्सी रखी ही नहीं थी। परन्तु उन्हें कुछ पता ही नहीं चला।

दूसरी स्त्री ने कहा, "यह तो कोई बड़ी बात नहीं है। मेरे पति ऐसे ध्यान में बैठते हैं, जो जब खाना खाने बैठते हैं तब यदि प्लेट सीधी नहीं रखी होती है तो उन्हें पता ही नहीं चलता है। मैं प्लेट सीधी करके रखती हूँ, वे खाकर

ऊठते हैं फिर प्लेट उल्ट कर रख देते हैं अर्थात् अब मुझे अधिक नहीं चाहिए।" आजकल कांटे और चमच इस प्रकार रखते है जैसे वेटर को पता चले parallel रखते हैं तो इससे पता चलता है कि वह उन्हें ले जाय और यदि cross रखें तो मतलब अब चाहिए। उस स्त्री ने कहा, "मैंने प्लेट सीधी करके रखी नहीं उल्टी रखी थी, मेरे पति आये और कुछ समय बैठकर देखा और देखा तो प्लेट उल्टी रखी हुई है, सोचा शयद उन्होंने खाना खा लिया है। पता ही नहीं पड़ा कि उन्होंने अब तक खाना खाया ही नहीं है। उठकर चल दिये। मैंने कहा, "कहां चल दिये खाना तो खाते जाइये।" बोले, "मैंने खाना खा लिया है।"

तीसरी स्त्री बोली, "तुम्हारी बातें बहुत अच्छी परन्तु मेरे पति तो पता नहीं क्या है।" दूसरी स्त्रियों ने पूछा, "बताओ।" बोली, "मैं थैले लेकर रोज बाज़ार में सब्जी लेने जाती हूँ। एक दिन मेरे पति भी बाज़ार आये थे वे मेरे सम्मुख आकर खड़े हुए और कहने लगे, "तुम्हें मैंने कहीं देखा है। तुम पहचानी हुई लग रही हो।" बोली, "ऐसे अलमस्त हैं मेरे पति।"

तुम ऐसे न होना। ये केवल उदाहरण दे रहा था तुम्हें। आवश्यक नहीं है कि आप ऐसे मस्त हों। मस्ती होनी चाहिए हृदय की। हृदय के भीतर घाव होना चाहिए जिसका विवरण प्यारे दादा जी बार बार "नूरी ग्रन्थ" में करते हैं। एक स्थान पर कहते हैं:—

उठकर अर्ध रात्रि को, मैं सितारों को दूँ सन्देश
समुद्र की लहरों को जाकर दूँ मैं उल्हानें।

यह हृदय का घाव जो होता है वह पीड़ा भी देता है। पर यह पीड़ा वहुत मधुर होती है। विरह की पीड़ा वहुत मधुर होती है। इतनी मीठी पीड़ा है जो सन्त मीरा अपने एक गीत में कहती है कि तुमने मुझे वहुत सताया हैं, मुझे दर्द वहुत दिया हैं परन्तु यदि पुनः मुझे अवसर मिले तो भैं पुनः इसी मार्ग का चुनाव करुंगी और इसी मार्ग पर चलना चाहूंगी, क्योंकि तुम्हारा दर्द वहुत मधुर है।

"कई कोटि दर्शन प्रभु प्यास,
तिन कउ मिलयो प्रभु अबिनास।"

उपर्युक्त शब्द हमारे जीवन में बार बार घंटे की भांति ध्वनित हों। तीर्थ स्थानों पर जाना, पाठ करना, पूजा करना, प्राणायाम करना, आसन करना,

माला फेरना, ये सब मार्ग ईश्वर की ओर ले जाते हैं, क्यों कि प्रभु कहते हैं, "जिस मार्ग से तुम आते हो, उसी मार्ग से मैं आकर तुम्हें मिलता हूँ।" सब मार्ग लम्बे हैं और न मालूम कितने जन्म लग जायं। यह मार्ग बहुत ही सरल है।

एक बहिन : दादा, प्यास तो रखते हैं, परन्तु संसार अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

दादा : नारद को भी यह ज्ञान हुआ इसलिए उसने दोनों बातें मांग लीं, प्रभु से बोले, "प्यास मुझे दो, विशुद्ध भक्ति मुझे दो केवल अपने चरणों के लिए। परन्तु ऐसा आशीर्वाद मुझे दो कि यह संसार मुझे आकर्षित न करे।

बहिन : उसके लिए तो कृपा चाहिए।

दादा : बेशक, कृपा चाहिए। कृपा के लिए भी प्यास चाहिए। कृपा के लिए पुकार चाहिए। कृपा वस्तुत: हर समय है, परन्तु यह कृपा दुर्बल है। वर्षा तो बाहर हो रही है और हम छत के नीचे बैठे हैं, गीले होंगे ही नहीं। वर्षा तो हो ही रही है। जो भी जायेगा, उस पर पड़ेगी, परन्तु यदि कोई जायेगा। कृपा तो वरस रही है हम केवल उसे लपकें और लपकते हैं उसी मात्रा में जिस मात्रा में हम प्यारे प्रभु का ध्यान करते हैं, विचार करते हैं, उसे पुकारते हैं, प्रार्थना करते हैं।

कितने ही मुझे कहते हैं कि प्रभु बहिरा है क्या जो हमारी प्रार्थनाएं नहीं सुनता? प्रभु को क्या ज्ञात नहीं है कि हमें क्या चाहिए, जो हम प्रार्थना करें? नहीं। मेरे बन्धु! प्रभु को सब कुछ ज्ञात है, परन्तु प्रार्थना हम अपने लिए करते हैं, क्यों कि जितना भी समय हम प्रभु का ध्यान करते हैं, उतना समय हमारी चेतना ऊपर की ओर जाती हैं। हम अपना ही लाभ करते हैं। इस समय हमारी चेतना नीचे के चक्रों में बन्धी हुई है। इस चेतना को ऊपर की ओर ले जाना है और चेतना ऊपर जाती है, जैसे जैसे हम प्यारे प्रभु का स्मरण करते हैं, ध्यान करते हैं, उसे पुकारते हैं, नाम का उच्चारण करते हैं, भक्तों के साथ बैठकर कीर्तन करते हैं, और इस कीर्तन में स्वयं का विस्मरण करते हैं।

कई कोटि दर्शन प्रभु प्यास,
तिन कउ मिलयो प्रभु अबिनास।"

(जाकरता : 15-3-1982)

राधा की पुकार

दादा : आज का सुविचार :

"श्याम तुम्हारे दर्शन बिना मैं कैसे जीवित रहूँ? मैं कैसे जीवित रहूँ?"

ऐसा तीव्र प्रेम कभी तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हुआ है, जिस प्रेम में नयन अश्रुधारा से पल्लवित हो जाएँ। "श्याम! तुम्हारे दर्शन मिले बिना मैं कैसे जीवित रहूँ? मैं जीवित नहीं रह सकती। मैं जीवित नहीं रह सकती। श्याम! अभी तक तुम्हारा दर्शन मुझे प्राप्त नहीं हुआ है।" जब ऐसे प्रेम की उत्पत्ति हृदय में होती है, तब श्याम दौड़ता हुआ आता है। वह श्याम जिसे वेद नहीं पहुँच सकते, वह श्याम जिसे अनन्त शास्त्र नहीं पा सकते, वह स्वयं उस हृदय में आता है जिस हृदय में उसकी आवश्यकता होती है। All that we have to do is to create a need.

"श्याम तुम्हारे दर्शन विना मैं कैसे जीवित रहूँ? मैं कैसे जीवित रहूँ?

यह है राधा की पुकार, राधा ने वार वार पुकारा : "श्याम! तुम्हारे दर्शन बिना मैं कैसे जीवित रहूँ?"

इस संसार में एक है स्नेह दूसरी है तृष्णा! तृष्णा वह है जो हमें खींच लाती है संसार में, जन्म मरण के चक्र में, परन्तु स्नेह है वह जो हमें स्वतंत्र करे, हमें उड़ाकर ऊपर ले जाय प्यारे प्रभु के चरण कमलों में। तुम्हें तृष्णा चाहिए अथवा स्नेह? स्नेह का सिक्का है सच्चा और दूसरे सिक्के हैं खोटे।

मौलाना जलालुद्दीन रूमी एक वहुत बड़े संत हुए हैं। "मसनवी" पुस्तक लिखा है उन्होंने। कहा जाता है कि यह पुस्तक हीरे जवाहरों से जड़ित है। कितने ही बरस हो गये हैं, आज भी इस पुस्तक को पढ़कर आश्चर्य होता है, इस पुस्तक में कितने ही आख्यान हैं। एक आख्यान में मौलाना रुमी लिखते है:-

एक राजा था, उसने सात मंजिलों का एक महल बनवाया। बोला इन सातों मंजिलों में मैं अपना खजाना रखता हूँ, तुममें से जिसे जो चाहिए ले जाय। लोग दौड़ते हुए आये इसलिए कि खजाना मिल रहा है। राजा ने घोषणा

की कि अमुक दिन पर ये सातों मंज़िलें खुली रहेंगी और एक ही बार में जिसे जितना चाहिए उठा ले। कितने ही लोग आये थे। भूतल (ground floor) पर उसने कौड़ियाँ बिछा दीं। लोगों ने जब कौड़ियाँ देखीं तो सोचा इनसे ही बोरे भर ले जाते हैं। अधिक सोच विचार नहीं किया। कहने लगे कौन ऊपर जाय। ऊपर भी कौड़ियाँ ही होंगी, और नहीं तो क्या होगा? वहां पर दूसरे प्रकार के लोग भी आये थे। उन्होंने सोचा राजा ने सात मंज़िलें बनवाई हैं चलकर देखें तो पहली मंजिल पर क्या है? भूतल पर तो कौड़ियां हैं, अब देखें पहली मंजिल पर क्या है? वहां जाने पर देखा तो वहां पर ताम्र मुद्राएं थीं, तो सोचा चलों अच्छा हुआ जो यहां तक आ गये। इनसे ही थैले भर कर चलते हैं। दूसरे लोग आये उन में से कुछ लोगों ने सोचा दूसरी मंजिल पर चलकर देखते हैं। दूसरी मंजिल पर चांदीके सिक्के पड़े थे। कुछ लोगों ने चांदी के सिक्कों से थैले भर लिये परन्तु कुछ तीसरी मंजिल पर गये, वहां पर पड़े थे सोने के सिक्के और गिनियाँ। जिन्हें देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। चौथी मंजिल पर पड़े थे मोती (pearls) कुछ लोग उनसे थैले भर कर ले गये। कुछ थोड़े से लोग पांचवी और छठी मंज़िल तक पहुँचे। जहां उन्हें हीरे और जवाहर मिले। उन्होंने अधिक न सोचकर हीरे और जवाहरों से थैले भर लिए। केवल एक व्यक्ति था जिसने सोचा कि वह अंतिम मंजिल तक जायेगा। सातवीं मंज़िल पर क्या था? वह सातवीं मंजिल पर चढ़ा तो उसने देखा कि बादशाह स्वयं बैठे थे और बादशाह उससे आकर गले मिले, उसे छाती से लगाते हुए बादशाह ने कहा, "तुम मेरे हो। मैं तुम्हारा हूँ।" एक ही ऐसा निकला।

इसी प्रकार इस संसार में भी मंज़िलें हैं, पर श्याम तक वही पहुंचता है, जिसे श्याम के लिए स्नेह होता है। कहता है - ये हीरे और जवाहर मुझे नहीं चाहिए। मुझे मोती नहीं चाहिए, मुझे सोना नहीं चाहिए, मुझे चांदी नहीं चाहिए, यदि मुझे कुछ चाहिए: तो केवल तुम!

I want Thee, O Lord! I want nothing else, neither pleasures nor possessions, I need Thee! I need Thee!

स्नेह का सिक्का लेकर वह जाकर वहां पहुंचता है, जिसे कहते हैं सचखंड। "सच खंड बसै निरंकार" "श्याम तुम्हारे दर्शन के बिना मैं कैसे जीवित रहूं?

मैं कैसे जीवित रहूँ?"

इस संसार में दो शक्तियां हैं। एक का नाम है स्नेह जो प्यारे प्रभु के चरणों तक हमें ले जाता है। दूसरा है आकर्षण, जो हमें खींच लाता है इस संसार में। हम कहते हैं - हमें पुत्र चाहिए, पुत्रियां चाहिए, दामाद चाहिए, नौकरियां चाहिए। पैसा चाहिए, मान चाहिए, शान चाहिए, पद और प्रतिष्ठा चाहिए। आकर्षण हमें खींच कर बैठा है। मनुष्य का जन्म तो हमें इसलिए मिला है कि हम अपने को आकर्षण से दूर रखें। परन्तु सम्पूर्ण सृष्टि इस आकर्षण से बन्धी हुई है। यह जन्म है एक अवसर, इस आकर्षण से मुक्त होने का। परन्तु खेद इस बात का है कि हम अधिक और अधिक इस की ओर खिंचे चले जाते हैं।

"श्याम! तुम्हारे दर्शन बिना मैं कैसे जीवित रहूँ? मैं कैसे जीवित रहूँ?"

यह स्नेह कैसे उत्पन्न हो? यह स्नेह हम स्वयं नहीं उत्पन्न कर सकते। यह स्नेह आता है प्रभु की ओर से। इसलिए हमें प्रभु से मांगना चाहिए : "हमें स्नेह प्रदान करो।"

नारद महर्षि जब विष्णु के पास आते हैं, विष्णु उनसे कहते हैं: "मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम मांगो जो तुम्हें मांगना है।" नारद जी कहते हैं, "मैं क्या मांगूं? मुझे तो आपने सब कुछ दिया है, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।" विष्णु उसे कहते हैं, "कुछ भी मांगो। मैं चाहता हूँ तुम मुझसे कुछ मांगो। यदि तुम मुझसे कुछ मांगोगे तो मुझे प्रसन्नता होगी।" नारद जी कहते हैं : "मैं आपसे क्या मांगू?"

Only this, Lord Grant me pure love and devotion for thy lotus feet and so bless me that this world bewtching Ma'ya may not lead me astray!

"एक ही बात मैं आपसे मांगता हूँ कि मुझे अपने चरण कमलों के लिए विशुद्ध प्रेम दीजिये और ऐसा आशीर्वाद कीजीये जो मुझे यह माया भ्रम में न डाल सके। यह माया जो सारे संसार को बांधकर बैठी है वह मुझे भ्रम में न डाल सके।"

नारद को यह वरदान विष्णु देते हैं। फिर तुम्हें ज्ञात है कि कैसे नारद जाकर एक सुन्दरी पर मोहित होते हैं। बोले - मुझे वह स्वीकार करे। नारद

जी ने बहुत तपस्या की, इतनी तपस्या की कि अप्सरायें स्वर्गलोक से उत
कर उनके पास आई। परन्तु नारद जी उनकी ओर देखते भी नहीं। फिर ज
उन्हें मालूम पड़ा कि अप्सरायें उनके पास आई थी और उन्होंने उनकी ओ
देखा भी नहीं तो उन्हें अभिमान हो जाता है। बोले : "मैं कितने बड़े पद प
पहुँच गया हूँ जो माया मुझे भ्रम में नहीं डाल सकती। मैं भी शिव के समा
हो गया हूँ।" बोला : "मैं जाता हूँ। कैलाश पर्वत पर जाकर शिव से कहत
हूँ कि तुम अकेले नहीं हो दूसरा भी एक है जो तुम्हारे जैसा है। विष्णु स
सहन करते हैं। किन्तु हमारा अभिमान उसे कदापि सहन नहीं।

विष्णु कहते हैं कि तुम नम्र बनो। जब उन्हें ज्ञात होता है कि नार
को बहुत अभिमान हो गया है तब विष्णु क्या करते हैं? जैसे नारद जी ज
रहे थे, मार्ग में एक सुन्दर राजकुमारी देखते हैं। वह उन से कहती है "तु
कौन हो?" तुम्हारा मुख इस प्रकार ज्योति से चमक रहा है, तुम मनुष्य
अथवा देवता?" वह राजकुमारी उन से कहती है, "कल मेरा स्वयंवर हो
वाला है," उन दिनों में लड़कियो का अत्यधिक सम्मान होता था। अब बेटि
की माताएं बिचारी धन के थैले लेकर द्वार द्वार पर भटकती हैं। उन दि
में भारत जब संसार का अग्रसर नेता होता था, तब स्त्री जाति का बहुत सम्मा
होता था तब लड़कियां कहती थी : "हम अपने पति का चुनाव स्वयं करेंगी।
पुरुष आकर पंक्ति में खड़े होते थे और मन में सोचते थे मुझे ही आकर व
माला डालेगी। वह कितना न सुन्दर समय था। अब बेचारी कन्याओं का कित
हज़ारों रुपये दहेज देना पड़ता है तब जाकर उन का कल्याण होता है।

नारद जी सब कुछ भूल गये। वह सुन्दरी जो देखी तो सब कुछ भू
गये। भूल गये कि मैं कैलाश पर्वत जा रहा हूँ, शिवजी को बोलने कि तुम्हा
जैसा एक और भी उत्पन्न हो गया है। उनका सम्पूर्ण ध्यान जाकर उ
लड़की में खोया। विष्णु को प्रार्थना की कि, "प्रभु मुझे अद्भुत (Uniqu
बनाओ। मुझ जैसा अन्य कोई न हो।" मन में सोचा यदि मैं ऐसा बनूंगा त
राजकुमारी आकर मुझे ही वर माला पहनायेगी। नारद जी के हृदय के भीत
यही इच्छा थी कि वह राजकुमारी उन्हे ही वरमाला पहनाये। प्रभु ने देखा कि
यह बिचारा फंस गया है। माया के तीन रूप हैं: कंचन, कामिनी एवं कीर्ति

कंचन है- सोना, पैसा एवं, पदार्थ। कामिनी है Love of Passion और कीर्ति है - The desire for fame मान, यश एवं ख्याति। यह तीन रूप माया के है। विष्णु ने देखा कि यह बिचारा फंस गया हैं। सोचा इसकी प्रार्थना तो सुननी है क्यों कि उसको वरदान दिया है कि वह जो मांगेगा उसे मिलेगा।

दूसरे दिन नारद जी जाकर सब के साथ पंक्ति में खड़े हुए। सब देखने लगे कि वे कौन हैं? यह यहां पर कैसे आकर खड़ा हुआ है? ऐसा मनुष्य कैसे सोच सकता है कि उसे वरमाला पहनाई जायेगी। विष्णु ने क्या किया? उसे वानर का मुख दे दिया। उन्होने मांगा था "मुझे अद्भुत (Unique) करना, मेरे जैसा मुख किसी का भी न हो।" विष्णु ने सोचा अब इसे बचाना भी है और इस की प्रार्थना भी सुननी है। नारद जी मन में सोच रहे थे कि उन्हें ऐसा रूप मिला है कि शीघ्र ही सुन्दरी आकर वरमाला उनके गले में डालेगी। सुन्दरी हर एक के पास गई। उनके पास भी गई। वह एकदम से कांप उठी और सोचा यह कौन है? तव नारद के मन में आया कि कुछ न कुछ गड़वड़ अवश्य है। समीप ही एक तालाव था जाकर देखा तो उनका मुख कपि के समान था। उन्हें स्मरण हो आया कि उन्होंने प्रभु से दो बातें मांगी थीः एक तो यह कि मेरा रक्षण माया से करना और दूसरा यह कि मुझे अद्भुत मुख देना, ऐसा मुख किसी अन्य का न हो। प्रभु ने मेरी दोनों बातें मान ली। नारद जी को यह समझने में भी अधिक समय न लगा कि प्रभु ने उनके अभिमान को तोड़ने के लिए उन्हें यह अनुभव करवाया हैं।

ये तीन हैं माया के रूप। देखो हम में से कितने पैसे एवं पदार्थ में इतने फंसे हए हैं, जो समझते हैं कि पैसे एवं पदार्थ के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। दस कोटि मिले तो सोचते हैं सौ कोटि मिले। मन भरता ही नहीं। समझते भी हैं कि माया का संचय करने पर अनेक झूठ बोलने पड़ते हैं। सत्य से भी दूर रहना पड़ता है। हृदय के भीतर प्यास भी है कि हम सत्य के पथ पर चलकर जीवन बितायें। गुरूनानक देवजी से पूछा गया, "आप जिस प्रभु के वर्णन करते हैं, उनका नाम क्या है?" गुरू जी कहते हैं, "उस क़ा नाम है "सत्नाम" यदि उस को प्राप्त करना चाहते हो तो सत्य की राह पर चलना

होगा तुम्हें।" हमें पता भी है कि हमारे पास अत्यधिक धन है इतना कि यदि
हम खायें हमारी संतान खाये तथा उनकी भी संतान खाये फिर भी कम नहीं
होने वाला है। फिर भी माया, कंचन, कामिनी एवं कीर्ति में कितने फंसे हुए
हैं। सन्त, सत्पुरुष एवं प्रभु के प्यारे कितने ही ऐसे हैं जिनके सम्मुख तुम कितना
ही धन रखो वे उसे फेंक देंगे, कहेंगे, "ले जाओ।" उन के सम्मुख तुम सुन्दर
रूप लाओ, उन का ध्यान उस ओर नहीं जायेगा। परन्तु बिचारे कीर्ति में फंसे
हुए हैं कि उन का पंथ बढ़े। अमुक के पंथ में तीन हज़ार हैं, मेरे पंथ में पांच
हज़ार हों। यह भी माया का एक रूप है। गुरुजी (गुरूनानक देव) जब सुमेरु
पर्वत पर गये तब उन्होंने गोरख पंथियों को शिक्षा दी थी। वह शिक्षा समाहित
हुई है श्री जप जी साहब में। वहां क्या देखते हैं गोरख नाथ पंथ के गुरु की
यह इच्छा थी कि स्वयं गुरु जी भी उनके पंथ मे प्रविष्ट हो जांय। गुरूजी को
आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं, तब गुरूजी उन्हें बताते हैं कि यह भी
माया का एक रूप है। आप माया मै फंस गये हैं उससे मुक्त हों।"

"श्याम तुम्हारे दर्शन विना मैं कैसे जीवित रहूँ? कैसे जीवित रहूँ?"

इस आकर्षण से हम कैसे मुक्त हों? जब हमारे भीतर स्नेह की उत्पत्ति
होगी फिर ही यह बोध होगा कि जो कुछ भी प्यारे प्रभु ने हमारे पास भेजा
है उसमें हमारा भला है। गुरु अर्जुनदेव ने यह पुकार की "तेरा कीया मीठा
लागे।" हृदय के अन्तस्तल से यह पुकार उठती है।

लुक़मान एक प्रभु का प्यारा होता था। उस का जन्म "गुलाम" के घर
में हुआ था। उस के स्वामी को जव यह ज्ञात होता है कि उसकी अवस्था बहुत
ऊंची है तव वह लुक़मान से कहता है "मैं तुम्हें गुलाम करके नहीं रखूंगा"
मैं तुम्हें मुक्त करना चाहता हूँ। मुझे अब ज्ञात हुआ है कि तुम एक उच्च कोटि
के व्यक्ति हो।" लुक़मान ने कहा "स्वामी! आप मुझपर इतनी कृपा कीजिये
मुझे गुलाम करके ही रखिये। मैं गुलाम हूँ तब ही मेरी आत्मिक उन्नति होगी।"
परन्तु उसका स्वामी उसका अत्यधिक सम्मान करता था, इतना जितना गुरु
का करना चाहिए। हर बात पर उनसे विचार विमर्श करते थे। कुछ भी खाते
थे तो पहले उसे खिलाते थे। उस का आशीर्वाद लेकर कहते थे, "यह मुझे

प्रसाद रूप में मिला है।

एक दिन लुक़मान के स्वामी के पास कोई खरबूज़ लेकर आया। देखने में अत्यधिक सुन्दर था। वे बोले : "लुकमान को बुलाओ तो पहले उसे खिलाऊं, फिर मैं खाऊंगा।" खरबूज़ में से एक फांक काटकर लुक़मान को दी। लुक़मान शौक से खा गया। उसका मुख चमकने लगा। स्वामी ने समझा सम्भवत: उसे बहुत ही स्वादिष्ट लगा है। फल बहुत ही मीठा है। उन्होंने दूसरी फांक उसे दी, इस तरह तीसरी, चौथी और सत्रह फांकें लुकमान को दीं। लुकमान खाता गया और उसके स्वामी को प्रसन्नता हुई। अठारहवीं फांक अन्तिम थी। स्वामी ने सोचा : मैं भी तो खाकर देखूं कि कितना मिठास इस खरबूज़े में है। मैं भी तो इसका स्वाद लूं। एक टुकड़ा मुँह में डालते हैं - ऐसा लगा जैसा विष। उसकी जिह्वा में छाले पड़ गये। अत्यधिक कड़वा था। तब वे लुक़मान से कहते हैं :- "तुमने तनिक भी आभास नहीं दिया कि यह कड़वा है। तुम इस प्रकार खाते गये जैसे यह वहुत ही मीठा हैं। और मैं तुम्हें अधिक और अधिक देता गया। तुमने क्यों नहीं मुझ से कहा कि यह कड़वा है। मैं उसी समय इसे फेंक देता था।" लुक़मान बोला, "स्वामी! आपके कर कमलों से मुझे सदैव मीठी चीज़े ही मिलती रही हैं फिर यदि एक बार कड़वी चीज़ मिली तो कौन सी बड़ी बात है। यह भी मेरे लिए मिठाई है। "प्रियतम की ओर से सब मीठा ही मीठा।" "तेरा कीया मीठा लागे।"

प्रभु ने भी हमें इतनी मीठी चीजे दी हैं। यदि कोई कटु अनुभव हमें भेजता है तो हम कितना न चिल्लाने लगते हैं। कितने ही लोग कहते हैं - "प्रभु है ही नहीं।" कितने ही दूसरे कहते हैं - "प्रभु बहिरा है, वह सुनता नहीं है।" They must count their blessings, प्रभु ने हमें क्या क्या नहीं दिया है।

राबिया एक सन्त हो गई है। एक बार उसे ज्वर हुआ। ज्वर बढ़ता जाता था, तब उसकी एक सखी उससे कहती हैं : "राबिया! तुम प्रतिदिन प्रभु से बातें करती हो, फिर तुम क्यों नहीं कहती कि तुम्हारा ज्वर उतार दें। तुम्हें कितना कष्ट है।" राबिया उत्तर देती है : "प्रभु से कहूँ कि ज्वर मुझ से ले

लो, ज्वर भी तो उन्होंने भेजा है। उनका ही उपहार और मैं उनसे ही कहूं कि मुझ से वापस ले लें। मेरे लिए यह उपहार बहुत ही मीठा है।"

"तेरा कीया मीठा लागे।"

जिस व्यक्ति के हृदय में स्नेह होता है, उसका व्यवहार ऐसा ही होता है।

"श्याम तुम्हारे दर्शन बिना मैं कैसे जीवित रहूं। मैं कैसे जीवित रहूं।" जब हृदय की गहराई में से यह पुकार उठती है, तब देखेंगे, तुम्हारे नयन अश्रु से भर जायेंगे। ये अश्रु हैं स्नेह के। इसलिए इन्हें मांगकर लो।

(जाकरता 15-4-1983)

खोज में निकलो

दादा : आज का सुविचार :

"बीच गगन में बीना बाजे"

गगन क्या है? गगन है आस्मान, आकाश जैसा यह बाहर दिखता है, उससे कहीं बड़ा आकाश भीतर में है। विदेश में अब उसकी खोज चल रही है। उस अन्तःकरण के आकाश में बीन बज रही है। इस बीन को सुनना है। राधा ने सर्वप्रथम इस बीन को सुना था। फिर श्याम की ओर ध्यान दिया।

"बीच गगन में बीना बाजे"

इसके लिए मौन का अभ्यास आवश्यक है। राधा भी विनम्र हुई। उसने विनम्र होकर गागर भरी। हम पग पग पर सिर ऊंचा किये खड़े हो जाते हैं। जो छोटी वड़ी वात पर सिर ऊंचा किये खड़ा हो जाता है, वह गगन में नहीं पहुँचता, वीन नहीं सुनता।

एक बहिन : दादाजी! राधा को तो किसी प्रकार भी लेना था।

दादा : हाँ! कैसे भी लेना था, क्योंकि उसका चयन उसने स्वयं ही किया था। एक उपनिषद् में ऋषि कहते हैं : "जिसका परमात्मा स्वयं चयन करते हैं, वही परमात्मा को प्राप्त करता है।" फिर दूसरी ओर कहते हैं : "प्रभु सबमें विद्यमान हैं और किसी से अलग नहीं है" हम जन्ममरण के चक्र में हैं। न मालूम कितने जन्म लिये हैं। न मालूम कितनी बार हमने शरीर त्यागे हैं। किन्तु प्रत्येक बार वे हमारे साथ रहे हैं। कभी भी हमें छोड़ा नहीं है। किसी भी जन्म में रहे हों, हमें छोड़ा नहीं है। हमारे साथ हैं। हमें उसे खोजने के लिए केवल दुनिया से मुख मोड़ना है।

यहूदियों के जो आध्यात्मिक मार्गदर्शक हुए हैं, उन्हे कहते हैं "रबाइ"। एक दिन एक रबाइ के पास उसका पौत्र आया और आकर रोने लगा। रबाइ ने पूछा, "क्यों रो रहे हो?" पौत्र बोला : "पितामह! मेरे एक मित्र ने मुझसे धोखा किया है।" रबाइ ने पूछा : "कैसा धोखा दिया है?" पौत्र बोला, "हम

दोनो लुका-छिपी खेल खेल रहे थे। जब मेरी बारी आयी उसे ढूँढने की, तो वह जाकर कहीं छिप गया मैंने बहुत ही प्रयत्नों के पश्चात् उसे ढूँढ लिया। और जब मेरी बारी आई छिपने की और उसकी बारी आई मुझे ढूँढने की, तो मैं ऐसे स्थान पर जाकर छिपा कि वह मुझे ढूँढ ही न सका, और अब वह घर चला गया है। मेरे साथ उसने बहुत बड़ा धोखा किया है।"

उस समय उस रबाइ की आँखें आँसुओं से भर गई। उसे रोना आ जाता है। पौत्र पूछता है, "पितामह! आप रो रहे हैं? रोना तो मुझे चाहिए।"

रबाइ कहते हैं : "मेरे बालक! मैं रोता हूँ, क्योंकि प्यारे प्रभु के साथ भी हम ऐसा ही व्यवहार करते हैं जैसा व्यवहार तुम्हारे मित्र ने तुम्हारे साथ किया है। अब हमारी बारी है प्रभु को खोजने की। पर हम उसे खोजते ही नहीं। हम अपने व्यसनों में अपनी शक्ति व्यर्थ गंवा रहे हैं। अब समय है हम उसे खोजें।

"बीच गगन में बीना बाजे"

यह वीन सुननी है। श्याम! तुम्हारी वाँसुरी सुन रही हूँ। गोपियां पृथ्वी पर थी, पर वे श्याम की बाँसुरी में ध्यान लगाये हुए थीं। किसी समय भी बाँसुरी की मधुर तान सुनने में आती थी। कृष्ण मथुरा में गये। गोपियां पुकारती रहीं। बाँसुरी क़हाँ? श्याम कहाँ?

इस बीना की खोज में हम निकलें। ऐसा न हो, यह शरीर ढल जाए, और हम वाँसुरी न सुन सकें। यह शरीर मिला इस लिए है कि बाँसुरी सुनें और ज्योति प्रज्वलित करें। फिर हमारा ध्यान उस ओर जाता है। फिर यह संसार हमें त्रस्त नहीं कर सकता, क्योंकि यह तान इतनी मधुर है, कि हमारी चेतनता जाकर उसी में स्थिर होती है। ऐसा मनुष्य संसार में तो रहता है, परन्तु संसार उसे आकर्षित नहीं कर पाता।

(पुणे : 27-8-1982)

उसकी ओर देखो

दादा : आज का सुविचार :

न ही रोओ, न ही चिल्लाओ, न ही अश्रु बहाओ,

जैसे भी आयें दिन, वैसे ही बिताओ।

एक बहिन : बैठे ही आपके पास हैं: फिर रोये क्यों?

दादा : रहस्य तो यही है। बैठे ही वहीं हैं : फिर रोये किस लिए? जब वहाँ से दूर होते हैं, तब रोना शुरू होता है। यदि वहीं हैं तो फिर रोना किस कारण?

दूसरी बहिन : दादाजी! आप जो कहते हैं कि अश्रु बहाओ! अश्रु बहाओ! अश्रुओं से हृदय को पवित्र करो! यह रोना फिर कैसा है?

दादा : यह कल का विचार है :

सदैव रोओ, सदैव चिल्लाओ, सदैव अश्रु वहाओ :

ईश्वर कृपालु है, कहीं कभी सुनले पुकार!

परन्तु यह कल का सुविचार है : आज का सुविचार है :

न ही रोओ, न ही चिल्लाओ, न ही अश्रु बहाओ :

जैसे भी आयें दिन वैसे ही बिताओ!

दिन वहीं से आते हैं। उसके यहाँ से आते हैं

"मन मूर्ख काहे बिललाइए, पूर्व लिखए का लिखआ पाइये,

दूख, सूख प्रभु देवण हार, अवर त्याग, तू तिसह चितार!"

उसकी ओर देखो! उसकी ओर देखो!

मैं एक सत्पुरुष के पास गया। तब मैं छोटा बालक था ११-१२ बरस का। सत्पुरुष के पास जाते हैं तो कुछ न कुछ ले जाते हैं। ले जाते हैं कोई केला, कोई सेव, कोई संतरा अथवा और कुछ। और ले आते हैं कोई शिक्षा, या उनके वचन। फिर जब उठने लगा, तो मैंने कहा, "स्वामीजी! कोई शिक्षा दीजिए।"

बहुत कम शब्दों में शिक्षा दी। कम शब्दोंवाली शिक्षा स्मरण रहती। मुझे आज तक स्मरण है। सत्पुरुष ने कहा था :—

"कुत्ता नहीं होना, शेर होना!"

मैंने सत्पुरुष से कहा : "स्वामीजी! मैं तो जन्म से ही सिंह हूँ क्योंकि सिंह राशि में जन्मा हूँ। परन्तु अब तक मुझे ज्ञात नहीं है कि सिंह होना क्या होता है? गर्जना करूँ क्या?"

सत्पुरुष ने कहा : "कुत्ते और शेर में अन्तर इतना है कि कुत्ते की ओर पत्थर फैंकोगे तो वह पत्थर की ओर दौड़ेगा। जिसने फैंका उसकी ओर नहीं देखेगा। शेर की ओर तुम पत्थर फैंकोगे या गोली मारोगे तो वह गोली की परवाह नहीं करेगा। आकर उसे पकड़ेगा जिसने गोली मारी है। He goes to the source.

तुम भी उस स्रोत की ओर जाओ, कहाँ से आया है? यह, जिसे मैं आपत्ति समझता हूँ, कष्ट समझता हूँ: कहाँ से आया? किसने भेजा? यदि वहाँ से आया है तो इसमें भी कुछ अर्थ होगा। फिर उस अर्थ को खोज निकालो। अर्थ खोज निकालो, ऐसा समझो कि वह अनुभव हाथों से निकल जायेगा। नहीं तो घूम फिर कर तुम्हारे पास आता रहेगा। क्यों आया? क्या मुझे शिक्षा देने आया? एक बार उसके मर्म को समझा तो फिर वह तुम्हारे पास नहीं आयेगा। आयेगा तो फिर दूसरा अनुभव आयेगा। यह संसार अनुभवों का घर है। यह संसार है पाठशाला, अनुभव है हमारे अध्यापक। ये अनुभव आकर हमें शिक्षा देते हैं।

न ही रोओ, न ही चिल्लाओ, न ही अश्रु बहाओ,
जैसे भी आयें दिन, वैसे ही बिताओ।

तीसरी बहिन : यदि कोई रोग हो जाये तो डाक्टर के पास जाना चाहिए?

दादा : डाक्टर के पास क्यों नहीं जाना चाहिए। परन्तु डाक्टर के पास जाकर भी यदि कोई स्वास्थ्य लाभ न हो तो न रोना चाहिए, न चिल्लाना चाहिए और न ही अश्रु बहाने चाहिए, जैसे आये दिन वैसे ही बिताने चाहिए। जो भी अनुभव सामने आए, न मत करो। बोलो : "स्वीकार! स्वीकार! (I accept)

चार बातें प्यारे दादा के नक्शे में हैं, उन में से तीन पर विचार किया गया, तीसरी बात थी "I accept! I accept!"

चौथी बहिन : दादाजी! स्वीकार करने की शक्ति भी तो ईश्वर से ही प्राप्त होगी?

दादा : गुरू की ओर देखो तो शक्ति अपने आप ही प्राप्त हो जायेगी। इसी कारण गुरूजी (गुरू अर्जुन देव) कहते हैं, "और त्याग तू तिसह चितार," उसकी ओर देखो! उसका ध्यान करो वह तुम्हें शक्ति देगा! वह तो है ही शक्ति का भण्डार।

एक भाई : दादाजी ऐसे भी कहा जाता है कि यदि रोने से हृदय हल्का होता हो तो रोना चाहिए।

दादा : ठीक है। पर रोने से तो हमने देखा है कि ऐसा तो होता नहीं। उल्टा रोने से बढ़ता है।

पाँचवी वहिन : दादा, रोने से हृदय हल्का होता है।

दादा : पर हृदय भारी क्यों हो जो हल्का करें। भारी तो हम करते हैं। वस्तुत: हृदय तो हल्का ही होता है। हमें तो हल्का मिला। यदि शंका हो तो इस बालक की ओर देखो हल्का है न? हमने ही उसे भारी बनाया है।

"न ही रोओ, न ही चिल्लाओ, न ही अश्रु बहाओ,
जैसे भी आयें दिन, वैसे ही बिताओ।"

(लोनावला : 26-11-1982)

फ़ना हो जाओ

(मिट जाओ)

दादा : आज का सुविचार :-

द्वार पर तुम्हारे अब खड़ी हूँ मैं,

आश्रय सब त्यागे मैंने, फ़ना होना चाहती हूँ मैं।

मेरे प्रियतम! तुम्हारे द्वार पर खड़ी हूँ मैं। सब आश्रय त्याग कर आई हूँ। न पैसे और पदार्थ का सोच है और न ही बड़प्पन, ख्याति एवं अभिमान का, न ही मित्र और सखा का सोच है मुझे। सब कुछ त्याग कर मैं तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ी हुई हूँ। एक ही बात तुमसे अब मांगना चाहती हूँ: "फ़ना हो जाऊँ! फ़ना हो जाऊँ! फ़ना हो जाऊँ! "

थोड़ी देर पहले दादा गंगाराम ने बताया था कि जो स्वयं को विस्मृत करते हैं, वे ही प्रियतम को प्राप्त करते हैं। परन्तु स्वयं को कैसे विस्मृत करें? इसके लिए कृपा चाहिए। इसलिए तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ी हुई हूँ और खड़ी रहूँगी। न केवल इस जन्म में, परन्तु जन्म जन्म में मैं खड़ी रहूँगी और छोड़ूँगी नहीं।

"आश्रय सब त्यागे मैंने, फ़ना होना चाहती हूँ मैं।"

आज यह एक विचार अपने साथ ले जाओ : "मिट जाएँ! मिट जाएँ" इसलिए विनम्र बनने का प्रयत्न करें। तुम अवश्य ही विनम्र हो गये हो मुझे भी आशीर्वाद दो ताकि मैं भी विनम्र हो जाऊँ। यही एक आशीर्वाद मुझे चाहिए, और कुछ नहीं चाहिए। मुझे आशीर्वाद दो ताकि मैं विनम्र बनूँ।

सन्त, सत्पुरुष, प्रभु के प्यारे उनका साक्ष्य यही है: वे सदैव नम्र रहते हैं। उनके साथ कैसा भी व्यवहार करो, उन्हे कुछ सोच विचार नहीं होता, उन्हें धक्के मारो, उनसे कड़वे वचन बोलो, वे कभी भी धैर्य नहीं खोते। क्योंकि उनका अहं "मैं" "मैं" मिट चुका है, सदैव के लिए मिट चुका है। सन्तों में "मैं" "मैं" है ही नहीं। सन्तों में "मैं" है परन्तु वह सच्चा "मैं" है। जो सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान है। वही सन्तों में विद्यमान है। परन्तु यह जो शारीरिक "मैं"

है, वह उनमें नहीं है। वे तो सदैव विनम्र रहते हैं।

"द्वार पर तुम्हारे अब खड़ी हूँ मैं,

आश्रय सब त्यागे मैंने, फ़ना होना चाहती हूँ मैं।"

सन्त दादू के सम्बन्ध में कहा जाता है – सन्त दादू एक विचित्र सन्त थे, कुछ पंडित इस सन्त की प्रशंसा सुनकर सोचते हैं कि इस सन्त के पास जाकर उनके चरणों में बैठें। हम ज्ञानी रहे हैं, हमने शास्त्र पढ़े हैं, पर हमें प्राप्त तो कुछ भी नहीं हुआ है। केवल हमारा अभिमान ही बढ़ा है और वास्तविक ज्योति से हम दूर हो गये हैं। जहाँ जहाँ अभिमान है वहाँ वहाँ अन्धेरा है। कितने भी शास्त्रों का अध्ययन मैं करूँ, कितने भी पाठ मैं पढ़ूँ, यदि मुझमें अभिमान है तो फिर मैं अन्धकार में हूँ। दोनो पंडितों ने एक दूसरे से कहा कि चलकर ज्योति का किरण सन्तों से ग्रहण करें।

दोनों आते हैं। एक स्थान पर आकर बैठते हैं। वहाँ पहुँचकर देखते हैं कि एक व्यक्ति भीतर से आ रहा है। उन दिनों में ऐसा माना जाता था। यह बात सोलहवीं शताब्दी की है। चार शताब्दियां पूर्व के लोगों में कितने ही अन्धविश्वास थे। आज भी कितनों में अन्धविश्वास हैं। मैं अहमदाबाद गया हुआ था। मुझे एक युवक मिला, बोला मेरे पिताजी कहते हैं "जब भी काम के लिए निकलो और सामने से बिल्ली गुज़र जाय तो लौटकर आ जाओ। काम पर न जाओ।" आज तक देखो, बीसवीं शताब्दी में जब अणु बम तैय्यार हो चुके हैं, हवाई जहाज़ मानव को सैर कराते हैं, तब पिता अपने पुत्र से कहता है, "यदि तुम घर से निकलते समय बिल्ली देखो तो लौट आओ।" इस प्रकार कितने ही अन्धविश्वास अब तक प्रचलित हैं। १३ नम्बर कमरा होटेल में प्रायः होता ही नहीं। १३ नम्बर पर आकर गुरूजी ने कहा, "तेरा! तेरा! तेरा!" अब तो कितने ही होटल हैं जो १३ नम्बर लिखते ही नहीं, १२ के पश्चात् १४ नम्बर ही लिखते हैं।

अन्धविश्वास कितने ही हैं। उन दिनों में यह भी एक अन्धविश्वास होता था कि यदि तुम काम पर जा रहे हो और तुम्हें कोई व्यक्ति मिले जिसके सर पर बाल न हों, तो समझ लो तुम्हारा काम नहीं होगा। ये बिचारे बहुत दूर से सन्तों के पास इस आशा में आए थे कि जाकर सन्तों से एक किरण

ज्योति का प्राप्त करें। दुर्भाग्यवश उन्हें एक गंजा व्यक्ति सामने से आता हुआ मिला। उन्हें बहुत आक्रोश आ गया। वे अपने को संयमित न कर सके। एकदम उसके सर पर मारना शुरू कर दिया, और उसके सर पर प्रहार करते हुए बोले कि, "तुम हमें मार्ग में क्यों मिले? हम सन्त से मिलने की इच्छा लेकर आये हैं अब तुम्हारी भेंट का अर्थ यह है कि सन्त से मिलने की हमारी इच्छा पूर्ण नहीं होगी।" वह बिचारा मौन रहा। दोनो ने आकर उस पर प्रहार किया। फिर उससे पूछा, " अच्छा! सन्त दादू का स्थान कहाँ है?" उसने उत्तर दिया, "सन्त दादू का स्थान यहीं पर है।" वह व्यक्ति जिसे मार पड़ी, बिना कुछ कहे चला गया। पंडित जाकर भीतर बैठ गये। कुछ समय के पश्चात् सत्संग होना था। बहुत ही सत्संगी एकत्रित होने लगे। कुछ सत्संगी कहने लगे, "सन्त आ रहे हैं!, सन्त आ रहे हैं!" सन्त आकर बैठे। पंडित क्या देखते हैं कि यह तो वही गंजे सर वाला व्यक्ति है जिसे उन्होंने मारा था। बहुत ही लज्जित हुए। मन में सोचा हम आये तो इससे कृपा ग्रहण करने के लिए थे परन्तु, हमने इस पर प्रहार किया। परन्तु देखो सन्त दादू क्या करते हैं! उन्हें बुलाते हैं, अपने निकट बिठाते हैं और उनसे कहते हैं, "जब दो पैसे का मिट्टी का बर्तन खरीद करते हैं तब उसे भी ठोक पीट कर देखा जाता है! तुम लोग तो गुरू करने आये हो। यह आवश्यक है कि उसे भी ठोक ठोक कर देखा जाय।" यह है सन्तों का व्यवहार। यह है सन्तों की महिमा!

"द्वार पर तुम्हारे अब खड़ी हूँ मैं,
आश्रय सब त्यागे मैंने, फ़ना होना चाहती हूँ मैं।"

सन्त तुकाराम जाते हैं कहीं व्यापार करने। लौटते हुए रात होने लगती है। रास्ते में ईख सस्ती मिल रही थी। सोचा, "यह ले जाऊँ। घर वालों को भी खिलाऊँ और कुछ जाकर बेचूँ भी। इससे कुछ पैसे भी कमा लूँगा।" आ रहा है, मार्ग में देखता है कि एक विधवा है जिसे छः बच्चे हैं जो रो रहे हैं क्योंकि उन्हें खाने के लिए कुछ मिला नहीं हैं। सन्त को देख कर कहते हैं : "कई दिनों से हमें भोजन नहीं मिला है।" इस सन्त से यह विस्मरण हो जाता है कि ईख घर वालों के लिए ले जा रहा हूँ, और उसमें से थोड़ा बेचने के लिए भी लिये जा रहा हूँ, और जिससे थोड़ा सा कमा भी लूँगा। वे ईख

उन बच्चों को दे देते हैं, केवल एक ईख अपने लिए ले आते हैं। उनकी पत्नी आवली पूछती है, "पैसे ले गये थे, क्या ले आए?" उत्तर देता है, "यह एक ईख।" उनकी पत्नी को ज्ञात था कि उसके पति को जो भी मिलता है वह दे देते हैं। घर की उसे चिन्ता नहीं है। उसे इतना जोश आता है कि वह ईख लेकर पति की पीठ पर मारती है।

तुमने कभी देखा है कि कोई पत्नी अपने पति को मारे? परन्तु इस सन्त की पत्नी ऐसी ही थी। मैंने भी एक ऐसी पत्नी देखी है। मेरे पास अब तक एक ही ऐसा पुरुष आया है। मुझसे कहा, "मेरी पत्नी मुझे मारती है।" बोला "मैं घर जाना नहीं चाहता।" हैद्राबाद (सिन्ध) में सत्संग में आते थे। उनकी आयु भी काफ़ी थी। मुझसे कहा, "मैं घर जाने से डरता हूँ।" मैंने कहा, "तुम डरते क्यों हो? अपने घर तो प्रसन्नता पूर्वक जाना चाहिए।" बोला, "मेरी पत्नी मुझे मारती है।" अब तक एक यही उदाहरण मुझे मिला है। हो सकता है और भी कोई हों परन्तु छिपाते हों। मुझे मालूम नहीं है।

इस सन्त की पीठ पर ईख मारती जाती है। ईख टुकड़े टुकड़े होती गई, फिर भी उसे छोड़ती नहीं है। अन्ततोगत्वा उसके हाथ थक गये। सन्त ने देखा कि उस ईख के छः टुकड़े हो गये थे। इसपर वे तालियाँ बजाने लगे और नाचने लगे और बोले, "आवली! तुमने बहुत अच्छा काम किया है। हम छः सदस्य हैं और तुमने छः टुकड़े कर दिये।" सन्तों की ऐसी ही महिमा हैं। वे फ़ना हो गये हैं। उन्हें "मैं" "मैं" है ही नहीं।

"द्वार पर तुम्हारे अब खड़ी हूँ मैं,
आश्रय सब त्यागे मैंने, फ़ना होना चाहती हूँ मैं।"

तुम में से कितने मिटना चाहते हैं? आज कम से कम प्रयत्न तो करो! कोई भी जब हमें कुछ कहता है, तो हम मन में सोचने लगते हैं, "किसे कह रहा है? मेरे सम्बन्ध में उसे क्या पता है कि मैं क्या चीज़ हूँ। इसका पता तो किसी को भी नहीं है।" आज प्रात:काल से मैं सोच रहा हूँ कि इस प्रवचन का प्रयोग करूँ जो मुझे मिला है। कौन सा प्रवचन :

"द्वार पर तुम्हारे अब खड़ी हूँ मैं,
आश्रय सब त्यागे मैंने, फ़ना होना चाहती हूँ मैं।"

आज यहाँ पर हम इतनी वड़ी संख्या मे एकत्रित हुए हैं। जहाँ भी जाता हूँ वहाँ पुष्प ही पुष्प (दादाजी का जन्मदिन होने के कारण उन्हें जगह जगह पर फूल भेंट किये गये थे।) कुछ लोग फूल प्लास्टिक में लपेटकर आते हैं। मैं स्वयं से कहता हूँ : "ये मुझे नहीं पहचान रहें हैं। मैं भी दर्शक (Spectator) होकर देखूँ जैसे तुम दर्शक होकर देख रहे हो। इसी कारण तुम देखते हो कि तुम बोलते हो Happy Birthday तो मैं भी बोल रहा हूँ Happy Birthday मैं भी हृदय में सोचता हूँ कि हमें थोड़े ही पहचानते हैं। जो हमसे तीखा बोलते हैं, उन्हें थोड़े ही हमारी पहचान है। न मालूम किसके लिए बोलते हैं? तुम ध्यान न दो। ऐसा करने के लिए प्रयत्नशील रहो। किंतु, प्राय: हमारी दशा कैसी रहती है? किसी से जाते हुए यदि हमारे पैर पर पैर आ जाता है तो हम एकाएक बोल पड़ते हैं, "अरे! तुम अपने को क्या समझती हो? तुम सदैव ऐसा ही व्यवहार करती हो।" प्रसाद बाँटा जाता है और यदि भूलवश किसी को प्रसाद न मिले तो कहेंगे, "यह मुझसे सदैव ऐसा ही करती है। मुझे देती ही नहीं।" काश! हम मिट जायं! मिट जायं!

ऐसा आशीर्वाद इस दास को भी देना। मैं भी फ़ना हो जाऊँ! मिट कर, जाकर अपने प्रियतम, अपने महबूब से मिलूँ जिसके विरह में मैंने इतने बरस बिताये हैं। ऐसा आशीर्वाद मुझे देना।

(पुणे : 2-8-1983)

मुश्किल कुशा की ओर चलो

दादा :- आज का सुविचार :-

"ऐ दिल! तुम फ़िक्र मत करो, तेरा भी खुदा है :

मुश्किल पड़ी तो क्या हुआ, मुश्किल कुशा भी है।"

इस जीवन में कठिनाइयाँ अवश्य आती हैं। है कोई यहाँ पर जो कह सके कि उसके सम्पूर्ण जीवन में कठिनाइयाँ नहीं आई? एक था, जिसने कहा था कि उसके जीवन में कभी कोई कठिनाई नहीं आई। वह एक रबाइ था, एक यहूदी अध्यापक था। यहूदी अध्यापकों को अपने शास्त्र होते हैं, जिन्हें Torah कहते हैं।

एक दिन एक रबाइ अध्यापक पढ़ा रहा था। उसमें एक ऐसा प्रसंग आया कि यदि तुम्हें कोई कष्ट आये तो डर मत जाओ। उस समय प्रभु की ओर देखो। वह सब कष्टों का निवारण करता है। कभी भी कोई कष्ट आये तो दुखी न हो। उस प्रभु की ओर देखो, जो सब कष्टों का निवारण करता है।

एक विद्यार्थी ने पूछा:- "स्वामी! कठिनाई आये और हम न डरें? कठिनाई आए और हम विचलित न हों, कठिनाई आए और हम दुखी न हों, यह तो हम समझ नहीं पा रहे हैं। कृपया हमें समझाइये।"

तब वह रबाइ अध्यापक कहता है:- यह बात मै भी नहीं समझा सकता। मैं स्वयं भी विचलित हो जाता हूँ। मैं स्वयं भी दुखी हो जाता हूँ। तुमने प्राय: देखा होगा कि मैं जब पढ़ाने आता हूँ तो कभी कभी दुखी दिखाई पड़ता हूँ। पता है मैं दुखी क्यों होता हूँ? मेरी पत्नी बहुत ही तीखे स्वभाव की है। कभी कभी उसका व्यवहार ऐसा होता है कि मैं दुखी हो जाता हूँ। ऐसी दशा में मैं कैसे कहूँ कि तुम दुखी न हो। हाँ! यदि तुम्हें यह बात समझनी है तो अमुक व्यक्ति के पास जाओ। बचपन से उसने कठिनाइयों का सामना किया है। जन्म लिया तो उसकी माता की मृत्यु हो गई। नामकरण के दिन उसके पिता का देहावसान हुआ। फिर वह टुकड़ों पर ही पला। अभी थोड़ा बड़ा हुआ ही था कि उसकी एक टाँग टूट गई। फिर एक दिन किसी ने उसे पत्थर मारा और

उसकी एक आँख फूट गई। हर प्रकार की कठिनाइयाँ उस पर आई हैं पर वह सदैव मुस्कराता रहता है। मैने कभी भी उसे दुखी नहीं देखा है। कभी भी विचलित नहीं देखा है। कभी भी डरा हुआ नहीं देखा है। उससे ही जाकर पूछो कि जब कठिनाइयाँ आएँ तो दुखी न हों, कठिनाइयाँ आएँ तो विचलित न हों, और कठिनाइयाँ आएँ तो डर न जायँ। यह कैसे? अध्यापक आगे बोला:- "उसने पुत्री का विवाह किया। बिचारे ने दहेज भी बहुत दिया परन्तु सात दिनों के पश्चात् उसकी पुत्री अपने मायके लौट आई। उसकी सास बहुत ही तीखे स्वभाव की थी उससे बोली, :- "तुम्हारा पिता लंगड़ा, तुम्हारा पिता काना, उसने दहेज दिया क्या है? यह दहेज भी लंगड़ा और काना दिया है।" उस विचारी के लिए घर में इतना कलह था कि उसका वहाँ रहना कठिन हो गया। सातवें दिन आकर मायके बैठी। हर प्रकार की कठिनाइयाँ जो समझ सको और सोच सको उस बिचारे के जीवन में आई हैं! पर वह सदैव मुस्कराता रहता है।"

कक्षा के सब विद्यार्थी उस अध्यापक के पास आए। उसने उनका स्वागत किया। विद्यार्थियों ने कहा, "स्वामी! हम आपसे यह प्रश्न पूछने के लिए आए हैं।" वह मधुर कण्ठ से बोला, "प्रिय! मेरे पास कैसे आए हो?" बोले, "हमें हमारे अध्यापक ने आपके पास भेजा है कि हम आपसे इस प्रश्न का उत्तर पूछें।" प्रश्न सुनकर वह कहता है, "तुम लोग ग़लत पते पर आए हो। संभवत: तुम्हें कोई और पता दिया होगा उसने, क्योंकि मुझे तो इस जीवन में कभी कोई कष्ट नहीं मिला इसलिए मैं तुम्हें कैसे बता सकता हूँ कि जब कष्ट आए तो कैसे मुस्करायें? अब तक तो प्रभु की कृपा रही है जो मुझे किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा है।"

"एं दिल! तुम फ़िक्र मत करो, तेरा भी खुदा है।
मुश्किल पड़ी तो क्या हुआ, मुश्किल कुशा भी है।"

कठिनाई आई है तो कठिनाई को दूर करने वाला भी समीप ही खड़ा है।

एक बहिन- दादाजी! क्या फिर विद्यार्थी समझें?

दादा :- विद्यार्थियों ने समझा या नहीं, किन्तु हमने समझा? समझना है स्वयं को। दूसरों से हमें क्या लेना देना? समझें न समझें।

बहिन:- दादाजी इसे विस्तार से समझाइये।

दादा:- जिन्होंने विस्तार से समझने का प्रयत्न किया वे ही विचलित हुए, परन्तु जिन्होंने मर्म को समझा वे ही दृढ़ रहे।

"ऐ दिल! तुम फ़िक्र मत करो, तेरा भी खुदा है।
मुश्किल पड़ी तो क्या हुआ, मुश्किल कूशा भी है।"

बहिन:- दादा "कुशा" का अर्थ क्या है?

दादा:- कुशा का अर्थ है जो दूर करे, हटा दे। इसलिए मुश्किल कुशा का अर्थ हुआ, जो मुश्किल को आसान कर दे। आसान ही आसान हो जाय। जो कुछ दिखाई देता है, सत्य उससे भिन्न है, जो दिखाई मीठा देता है, वह कड़वा होता है और जो कड़वा दिखाई देता है वह वस्तुत: मीठा होता है।

"मीठा समझ के खाया, कड़वा उपजा स्वाद,
कड़वा समझ के खाया, मीठा उपजा स्वाद।"

मीठा सब विष है, मधु को छोड़कर; कड़वा सब घी है, विष को छोड़कर। मीठा जो तुम खाते हो, मिठाइयाँ इत्यादि। जो खाते जाते हो, खाते जाते हो, वह सब वस्तुत: विष है। मीठी चीजें शरीर के लिए लाभदायक नहीं हैं। मधु को छोड़कर, मधु खाने में कोई हानि नहीं है। मिष्ठान खाना है तो मधु खाओ, चीनी नहीं। महात्मा गाँधी जी ने तो चीनी के विरोध में आन्दोलन चलाया था। कहते थे चीनी हमारे राष्ट्र के स्वास्थ्य को नष्ट कर देगी।

एक सज्जन:- "दादाजी! लन्दन में एक Health Check-up Centre है, उसकी सभी दीवारों पर लिखा हुआ है, सफ़ेद डबलरोटी और सफ़ेद चीनी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।"

दादा:- अवश्य! सफ़ेद डबलरोटी और सफ़ेद चीनी विष के समान हैं। और कड़वा सब घृत है केवल विष जो अवश्य कड़वा लगता है। विष जो हुआ, आवश्यक है कि कड़वा लगे। दूसरी सब कड़वी वस्तुएँ घी के समान है जैसे कड़वी काकड़ी अथवा खीरा, कड़वे करेले भी घी के समान हैं। इसी प्रकार

तुम यदि बैठकर अपने बीते समय के जीवन पर विचार करोगे तो जिन्हें तुमने कड़वा या कटु समझा था, उनमें से ही वस्तुतः तुम्हें लाभ मिला होगा। मधुर समय तो विस्मरण में गँवा दिया। इस बात का जिसे ज्ञात होता है उसे विश्वास हो जाता है कि जो कुछ भी प्रभु करता है उसमें ही भलाई है। "ऐसे भी प्रभु! वाह वाह! और वैसे भी प्रभु ! वाह! वाह!"

गुरू अमरदास जी के पास एक व्यक्ति प्रतिदिन खिचड़ी तैयार करके लाता था। गुरू अमरदास जी बड़ी अवस्था के थे। तुम्हें पता है जब वे स्वयं शिष्य थे तब गुरू अंगददेव जी के सम्मुख कैसे खड़े होते थे? नम्रता से, नौकर की भाँति, दास होकर खड़े रहते थे। गुरू अंगददेव जी आयु में उनसे छोटे होते थे परन्तु गुरू अमरदास जी उनसे अवस्था में बड़े होते हुए भी दास की भाँति आकर खड़े होते थे। उनका एक भक्त रोज़ खिचड़ी लाता था। एक दिन खिचड़ी ले आने का समय हो आया। अचानक तूफ़ान आ गया। इस भक्त ने सोचा "मैं तूफ़ान में खिचड़ी कैसे ले जाऊँगा।" ऐसा सोचकर उसने प्रार्थना की, "हे प्रभु! तूफ़ान बन्द करो तो मैं अपने गुरू को खिचड़ी खिलाकर आऊँ।" तूफ़ान बन्द हो गया। वह खिचड़ी ले आया तो गुरू अमरदास जी उसे पीठ देकर बैठ गये। वह उनके सम्मुख गया तो गुरूजी ने फिर मुँह फेर लिया। शिष्य बोला, "स्वामी! कौन सा कसूर? कैसा गुनाह हुआ है मुझसे?? कृपया क्षमा कीजिए।" गुरूजी ने उनसे कहा, "तुमने यह क्या किया? तुमने प्रभु को जो कुछ करना है उसमें बाधा डाली। तुम्हें पता है कि तूफ़ान के द्वारा कितने ही प्राणियों को भोजन प्राप्त होता है। कितने ही प्राणी मिट्टी पर जीते हैं और यह मिट्टी उन्हें तूफ़ान के द्वारा ही प्राप्त होती है। तुम्हें पता है आज तुमने कितने ही जीवों को हानि पहुँचाई है। कभी भी प्रभु जो करते हैं उसमें बाधा नहीं डालनी चाहिए।"

"ऐसे भी प्रभु! वाह! वाह!" और वैसे भी प्रभु वाह! वाह!"

"मुश्किल पड़ी तो क्या हुआ, मुश्किल कुशा भी है।" मुश्किल कुशा की ओर जाना चाहिए। ऐसा नहीं कहो कि, "मेरा कष्ट दूर करो।"

एक बहिनः- कभी यदि वर्षा नहीं होती है तो प्रायः लोग प्रार्थना करते

हैं वर्षा के लिए।

दादा:- उन्हें पता है कि उनकी प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि जिसे पता है कि उसकी प्रार्थना सार्थक है वह कभी भी प्रार्थना नहीं करेगा।

एक सन्त के पास गये। तीन वर्षों से उस गाँव में वर्षा नहीं हुई थी। सन्त उस गाँव में आए हुए थे। गाँव के सब लोग मिलकर उनके पास गये और कहा, "महाराज! सच्चा विश्वास रखकर आये हैं आप सच्चे सन्त है; यदि आप प्रार्थना करेंगे तो वर्षा अवश्य होगी। हमारे पशु और हमारे मनुष्य सब बच जायेंगे। सन्त बोले, "तुम्हारा विश्वास दृढ़ है?" लोग बोले, "जी ! महाराज! हमें दृढ़ विश्वास है।" सन्त बोले, "अच्छा फिर किस समय प्रार्थना करूँ?" लोग बोले, "महाराज! हम तो यही सोचकर आए थे कि अभी ही आप प्रार्थना करें।" सन्त बोले, "परन्तु तुम्हारा विश्वास दृढ़ कहाँ है?" लोगों ने पूछा, "यह कैसे?" सन्त बोले:- "तुममें से एक भी छाता नहीं लेकर आया है, मैं यदि प्रार्थना करूँ और अब वर्षा हो जाय तो तुम सब भीग जाओगे क्योंकि तुम में से छाता तो कोई भी नहीं लाया है।" उन लोगों को वस्तुत: मालूम था कि उस सन्त की प्रार्थना से वर्षा नहीं होगी। इसलिए ऐसी प्रार्थना करो:- "Thy will be done" प्रभु जैसे तुम्हारी इच्छा हो।" क्योंकि उसकी इच्छा में ही सबका भला है। वह सर्व ज्ञानी है।

"ऐ दिल तुम फिक्र मत करो, तेरा भी खुदा है:
मुश्किल पड़ी तो क्या हुआ, मुश्किल कुशा भी है।"

(लोनावाला : 27-11-1982)

अभ्यास करो

दादा : आज का सुविचार :-

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

यह एक छोटा सा साधन है, जिससे मनुष्य के जीवन में अत्यधिक लाभ प्राप्ति होता है। और इसका जीवन पर अत्यधिक प्रभाव भी पड़ता है। वह यह है कि जैसे ही प्रातःकाल उठो, आँखे खोलो, उससे पूर्व कोई न कोई विचार लेकर उठो। आज प्रातःकाल जैसे ही मैं उठा, नूरी ग्रन्थ से मुझे निम्न विचार प्राप्त हुआ :

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

हमारा कष्ट यह है कि हमें नयनों में आलस है। दो चार दिन पूर्व मैं लोनावला में था। वहाँ एक बहिन मुझे मिली। बम्बई से आई थी। उसके नयन अश्रुओं से गीले थे। मुझसे कहा, "मुझे अत्यधिक प्यास है कि मैं प्रभु को प्राप्त करूँ : परन्तु क्या करूँ? आलस्य ने ऐसा घेर लिया है कि अब कुछ करने को मन करता ही नहीं।" मैं समझता हूँ, हम में से बहुतों की यही दशा है।

एक माल्ही के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसे एक प्लश का कम्बल (rug) मिला। माल्ही के लिए यह बहुत बड़ी बात थी। फटा हुआ नहीं, किन्तु एकदम नया कम्बल प्लश का उसे मिला था। दूसरे दिन उसे पता चला कि प्रातःकाल प्रभु उस उद्यान से गुज़रने वाले हैं जहाँ वह काम करता है। जो भी चाहे उस सुहावने समय में उनका दर्शन कर ले। माल्ही ने सोचा मुझे तो घर बैठे ही प्रभु के दर्शन मिल रहे हैं, लोग न जाने कहाँ कहाँ जाते हैं, कठिन साधनायें करते हैं। तपस्याएँ करते हैं। मुझे तो घर बैठे ही दर्शन हो रहे हैं। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ। परन्तु उसे तो एक दिन पहले प्लश का कम्बल मिला था वह उसे ओढ़कर सोया था। प्रातःकाल उसकी आँख खुली तो उसे स्मरण हो आया कि प्रभु उसके उद्यान से गुज़रने वाले हैं। उसने मन में सोचा थोड़ा सा और सो लेता हूँ। प्रभु आएँगे तो कुछ समय तो रुकेंगे। वह फिर सो गया। दूसरे दिन उसे पता चला कि प्रातःकाल प्रभु पुनः वहाँ से गुज़रने

वाले हैं। उसने सोचा कल प्रातः मैं अवश्य उठूँगा। प्लश का कम्बल इतना गर्म था और इतना नर्म भी था कि उसे उसमें से उठने को मन ही नहीं करता था। प्रतिदिन इस प्रकार अवसर खोता रहा।

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

हम भी ऐसे ही प्रतिदिन अवसर खोते रहते हैं। प्रतिदिन प्रभु गुज़रते तो हैं परन्तु वह अमृत समय निकल जाता है, काश! हम सोते रहते हैं! इस प्रकार एक एक दिन हमारा बीतता जा रहा है। देखिये! कितने ही दिन हमारे इस प्रकार निकल चुके हैं। आलस्य है हमारे नयनों में।

उपनिषदों में एक व्यक्ति का बहुत ही सुन्दर चित्रण है। वह पेड़ की एक डाली पर बैठा हुआ है। नीचे देखता है तो एक बहुत ही गहरा कूंआ है। सोचता है यदि इस डाल से नीचे गिरा तो सीधा इस कूएं में जा गिरूँगा। फिर मेरी क्या दशा होगी? फिर देखता है कि इस डाल को एक सफ़ेद चूहा एवं दूसरा काला चूहा काट रहे हैं। अरे! अब तो मैं किसी भी समय कूएं में गिर पड़ूँगा, फिर मेरी दशा क्या होगी? अभी इसी सोच में है तो ऊपर से मधु की एक धारा आकर उसके मुख में पड़ती है। उसके जिह्वा को उसका स्वाद मिलता है। वह सब कुछ भूल जाता है। वह सफ़ेद चूहा, वह काला चूहा और वह गहरी खाई, सब भूल जाता है। अपनी मस्ती में बैठा है। मधु का स्वाद ले रहा है।

उपनिषद् में कहते हैं कि मनुष्य की दशा भी यही है। बैठा है संसार रूपी वृक्ष पर। नीचे काल रूपी कूंआ है और किसी समय भी हम इस काल के मुख में जा गिरेंगे। और हर समय दिन एवं रात्रि रूपी ये सफेद एवं काले चूहे, काल रूपी शाखा पर बैठे हुए हैं और उसे काट रहे हैं। इस प्रकार हमारे रात्रि और दिन कटते जा रहे हैं। फिर अकस्मात यह समाचार आता है कि अमुक व्यक्ति चल बसा।

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

इसलिए सचेत होना है, तो अब सचेत हों। ऐसा न सोचें कि कल सचेत होंगे। कल कल करते रहेंगे तो हमारी दशा भी उस माल्ही के समान होगी

जो प्लश का कम्बल ओढ़कर सोया था। समय बीतता चला जाएगा। सचेत नहीं होंगे और कहते रहेंगे आज नहीं कल तो फिर इस प्रकार हमारी डाल कटती चली जाएगी।

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

क्या करें? अभ्यास करें। अभ्यास की बहुत आवश्यकता है। अभ्यास क्या है? अभ्यास है, वही वही बात पुनः करना फिर ऐसी अवस्था को प्राप्त करें कि वह स्वयं होने लगे। प्रारम्भ में हमें थोड़ा कष्ट अवश्य होगा। परन्तु एक बार यदि हम उसके अभ्यस्त हो जाएँगे तो फिर यह स्वचालित हो जायेगा। अभ्यास के द्वारा असंभव भी संभव हो जाता है। कितनी ही बातें असंभव दिखाई देती हैं। अभ्यास के द्वारा वे संभव हो जाती हैं। मुझे स्मरण है जब मैं कॉलेज में पढ़ता था। एक दिन कॉलेज जा रहा था। रास्ते में देखता हूँ कि दो लकड़ी के खंभे हैं उनके बीच में रस्सी बन्धी हुई है। एक लड़की १२-१३ बरस की उस रस्सी पर चल रही थी। एक ओर से दूसरी ओर आ रही थी। मैं आश्चर्य चकित हो गया। इतनी छोटी सी बच्ची कैसे रस्सी पर चल पा रही है? उसके हाथ में एक लाठी थी। उसके आधार पर balance कर रही थी। जब नीचे उतरी तो मैंने जाकर उससे पूछा, "मेरी बहिन! तुम रस्सी पर कैसे चल रही थी?" उसने मुझे एक ही शब्द में उत्तर दिया, "अभ्यास।" फिर बोली, "अभ्यास के द्वारा कुछ भी किया जा सकता है। मनुष्य को प्रभु ने ऐसी शक्ति दी है, कि यदि वह कोई बात बार बार करे तो वह कुछ भी कर सकता है। असंभव भी संभव हो जाता है।"

हम चलना कैसे सीखे? तुम्हें स्मरण है जब हम छोटे बच्चे थे, अभी प्रथम पग उठाया ही था कि गिर पड़े। किन्तु यह अभ्यास छोड़ नहीं दिया हमने। फिर उठे और प्रयास किया चलने का। फिर जा गिरे ज़मीन पर। फिर माँ आई और आकर हाथ थामा हमारा और फिर छोड़ दिया हमारा हाथ उसने। फिर गिर पड़े। किन्तु प्रयास छोड़ा नहीं। अब देखो कैसे चल रहे हैं कि दूसरे दौड़ रहे हैं तब हमारे साथ पहुँच पा रहे हैं। चलना कैसे सीखे? ऐसे ही सीखे - गिरे, गिरे और फिर उठे।

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

दूसरी बातों का अभ्यास हम शीघ्र करते हैं, पर जिसका हमें करना है उसके लिए कहते हैं थोड़ा ठहरकर। इस बीच सफेद चूहा और काला चूहा डाल काट रहे हैं और हमें कूएं में डाल देंगे। फिर यह अवसर न मालूम कब मिले?

देखो! पहाड़े कैसे सीखे हमने? हम प्राथमिक शाला में पढ़ते थे। हमारी अध्यापिकाएँ होती थी। दुपहर का समय पाठशाला का होता था। हमारी अध्यापिकाएँ हमें कहती थी पहाड़े बैठकर दोहराओ, "दो एकम दो, दो दूनी चार, तीन दूनी छः, चार दूनी आठ, पाँच दूनी दस।" और हम बैठकर बार बार इसे दोहराते थे। इसी प्रकार तीन का पहाड़ा। "तीन एकम तीन, तीन दूनी छः, तीन तिया नौ, चार तिया बारह। अथवा बारह का पहाड़ा दोहराते थे बारह एकम बारह, बारहा दूनी चौबीस, बारह तिया छत्तीस। इस प्रकार हम दोहराते रहते थे और फिर ऐसी अवस्था आती थी कि यदि कोई नींद में भी हमसे आकर पूछे "बारह पँजे?" हम बिना सोचे उत्तर देते "साठ।" अपने आप "साठ" मुख पर आ जाता। एक बालक के सम्बन्ध में मैंने सुना था। वह सो रहा था। वहीं पर उसकी माता किसी से बातचीत कर रही थी। माता ने बात बात में मितेरो (खाने का एक फल जो सिन्ध और राजस्थान के रेगस्थान में उत्पन्न होता है) उसे संभवतः मितेरो चाहिए था। माता के मुख से जैसे यह शब्द निकला तो वह बालक जो निद्रा में था उसने सुना। अर्धनिद्रावस्था में होने के कारण बालक ने समझा कि उसकी माता कह रही है टि तेरहो (तीन तेरहा)। बालक ने उस अर्धनिद्रावस्था में ही उत्तर दिया, "उनतालीस" वस्तुतः पहाड़ों का प्राथमिक शाला में इतना अधिक अभ्यास होता है। नहीं तो तेरह का पहाड़ा कठिन माना जाता है। परन्तु अभ्यास से वह भी सरल हो जाता है।

श्रीकृष्ण से अर्जुन कहते हैं : "कृष्ण! तुम कहते हो कि मन को रोकूँ, उसे एकाग्र करूँ, परन्तु मन तो है तूफान जैसा! तूफान जैसे मन को मैं कैसे रोकूँ?" कृष्ण उसे कहते हैं, "मन को तुम रोक सकते हो। उसके लिए दो

बातें तुम करो : (१) अभ्यास (२) वैराग्य। वही बात बार बार करो। मन में नये खाँचे (grooves) हमें बनाने हैं। जैसे फ़ोनोग्राम का रिकार्ड होता है। सुई रखते हैं और groove में अपने आप चलती है। इसी प्रकार हमारे मन में भी खाँचे बन गये हैं जो जन्म जन्म में हमने बनाये हैं। उन्हें बन्द करके हमें नये खाँचे बनाने हैं। वे जो हमने बनाये हैं वे हैं मन की चंचलता के। गुरूजी कहते हैं "दह दिस धावत।" दसों दिशाओं में हमारा मन भटक रहा है घूम रहा है और कूद रहा है। अब हमें एकाग्रता के खाँचे बनाने हैं। जैसे मन की चंचलता समाप्त हो। ये नये खाँचे अभ्यास के द्वारा बनेंगे। अभ्यास करते जाओ।

एक ओर अभ्यास और दूसरी ओर वैराग्य। वैराग्य क्या है? मन को काल के तीर से मारना है। हे मन! काल आ रहा है, यह सब यहीं छोड़ना है। एक बहिन थी बोली, "मुझे साड़ी चाहिए। मेरे भतीजे का विवाह है। मैं साड़ी ऐसी लूँ जो उस विवाह के समय वह साड़ी सर्वाधिक सुन्दर लगे।" उसे यह विचार आया। बहुत ही दुकानों पर गई। आखिकरकार उसने साड़ी खरीदी। निःसन्देह वह साड़ी सर्वाधिक सुन्दर थी। जब वह साड़ी पहनकर विवाहस्थल पर गई तो सब लोग उसकी साड़ी की ओर देख रहे थे। और पूछते, "तुमने यह साड़ी कहाँ से ली है?" उन्हें उसने बताया नहीं कि किस दुकान से ली थी। ली तो उसने पूना से ही थी किन्तु उसने पूछने वालों से कहा कि उसने हाँग काँग से ली है। देखो न! साड़ी जो हमें पहननी पड़ेगी, जब हम यह शरीर त्यागेंगे, जब हम बेघर होंगे। हमें कोई स्थान रहने के लिए नहीं होगा, कोई घर नहीं होगा, कोई वस्त्र पहनने के लिए नहीं होगा। उस समय के लिए हम साड़ी नहीं लेते। तो वैराग्य यह है कि यह सब मिटने वाला है। हे मेरे मन! तुम इन सब चीज़ों को प्राप्त करने के लिए मत भागो। तुम वह प्राप्त करो जो है नित्य पदार्थ। वह प्राप्त करो जो है सत्य पदार्थ। आध्यात्मिक कृपा ही प्राप्त करो। "नूरी ग्रन्थ" में बार बार यह एक उपदेश हमें मिलता है, आज मैंने "नूरी ग्रन्थ" से एक प्रवचन लिया। वह इन शब्दों में था, "जूठे बँगले, जूठे सुन्दर मकान, जूठी साड़ियाँ, जूठे बाग़ और बग़ीचे सब जूठे, धन और दौलत सब कुछ धूल है। नित्य पदार्थ तो है आध्यात्मिक कृपा। उसे प्राप्त करने

का तुम प्रयत्न करो। इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता है।

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

इस पदार्थ लेने का प्रयत्न करो। गौतम बुद्ध का एक शिष्य था, उसने निश्चय किया कि जब तक उसे प्राप्ति नहीं हुई है तब तक वह ध्यानावस्था में ही रहेगा। बन में जाकर एक एकान्त स्थल पर बैठा। कितने ही दिन बीत गये। अपना प्रयत्न करता रहा। समय बीतता गया, उसने देखा उसे कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई है। वह हताश हो गया।

मेरे प्रियजन! स्मरण रखो जब भी कोई हताश होता है तब शैतान को अवसर मिलता है। वह आकर हमें घेर लेता है। इस कारण कभी भी हताश नहीं होना चाहिए। शैतान के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने कितने ही युग और कितनी ही शताब्दियां कार्य किया। अन्त में उसने सोचा कि वह अब वृद्ध हो गया है और उसे अपना व्यवसाय बन्द कर देना चाहिए। उसने कहा उसके पास जो भी अस्त्र हैं वह बेच देगा। इस आशय का एक विज्ञापन उसने समाचार पत्रों में डलवाया कि जिसे भी चाहिए, वह आकर ले जा सकता है। मुझे अब इनकी अधिक आवश्यकता नहीं है। लोग आकर उसके अस्त्र लेने लगे। एक अस्त्र ऐसा था जो अत्यधिक प्रयोग किया हुआ दिखाई पड़ता था और बहुत ही पुराना भी लग रहा था। उसका मूल्य भी अधिक था। लोग उससे पूछते हैं, "यह कौनसा इतना पुरान अस्त्र है जिसका मूल्य तुमने इतना अधिक रखा है। यह अस्त्र तुमसे कौन लेगा?" वह बोला, "मूल्य का तो मुझे पता नहीं है, पर इतना मुझे मालूम है कि यह अस्त्र मुझे अत्यधिक काम में आया है। मैंने इसका मूल्य वस्तुतः बहुत ही कम रखा है। इसका मूल्य इससे कहीं अधिक होना चाहिए।" कहते हैं उसके सभी अस्त्र बिक गये किन्तु वह एक अस्त्र रह गया। उसे किसी ने भी नहीं खरीदा। वह बहुत ही महंगा अस्त्र था। एक वह अस्त्र ही अब उसके पास बचा है। वह अस्त्र है "हताश होना।" शैतान जिस समय भी मनुष्य को हताश और विचलित देखता है वह आकर अपना कार्य आरम्भ करता है। इसलिए तुम कभी. भी हताश न हो। इस राह में तुम जब आगे बढ़ते हो तो प्रयत्न करते जाओ। हाताश हुए तो शैतान आकर तुम्हें अपने अस्त्र से पकड़ लेगा।

गौतम बुद्ध का शिष्य यह भिक्षू सोचता है कितने ही महीने बीत गये हैं परन्तु अब तक मुझे प्राप्ति नहीं हुई है। उस समय उसे गौतम बुद्ध के कुछ प्रवचन स्मरण हो आते हैं। शैतान ही उसे प्रवचन स्मरण कराता है। गौतम बुद्ध ने एक अवसर पर कहा था कि जिज्ञासुओं के भी अलग अलग प्रकार होते हैं। कुछ बहुत ही ऊच कोटि के होते हैं और कुछ निम्न कोटि के। उस भिक्षू ने सोचा संभवतः वह निम्न कोटि का है। व्यर्थ ही समय खो रहा है और वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाएगा। जो निश्चय उसने किया था वह छोड़ देता है और लौट आता है। दूसरे जिज्ञासू उसे घेर लेते हैं और समझाते हैं कि, "यह तुमने क्या किया? तुमने निश्चय किया था कि जब तक प्राप्ति (enlighten) नही कर लोगे तक तक नहीं लौटोगे। इतने में कैसे लौट आए?"

उसे गौतम बुद्ध के पास ले जाते हैं। गौतम बुद्ध से कहते हैं कि, "यह निश्चय करके गया था। पर अब अपना निश्चय छोड़कर लौट आया है।" गौतम-बुद्ध उसकी ओर देखते हैं और कहते हैं, "मेरे प्रिय! पूर्व जन्म में तुमने पांच सौ बैल गाड़ियों में जो लोग बैठे थे और उनमें जो सामान था उसे तुम अकेले ने बचाया था। अब तुम इतने हताश कैसे हो गये।"

वह भिक्षू कहता है, "स्वामी! मैंने कैसे बचाया? मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है।"

गौतम बुद्ध उसे बताते हैं, "पूर्व जन्म में मैं था बोधिसत्व। तब काशी के राजा ब्रह्मदत्त थे। मैं था व्यापारी उन दिनों। उन दिनों बैलगाड़ियों से व्यापार होता था। उनमें ही सामान ले जाया जाता था। बयाबानों से गुजरते थे। बयाबानों में रेती ऐसी बारीक होती थी कि यदि अंजलि में लेकर पकड़ने का प्रयत्न किया जाता था तो वह खिसक जाती थी। दिन के समय इतनी अधिक गर्मी होती थी कि आग की गर्मी से भी अधिक गर्मी का आभास होता था। एक दिन पाँच सौ बैलगाड़ियां लेकर हम निकले। उनमें आदिमी भी थे और सामान भी था। सात दिनों की यात्रा थी। हमनें सात दिनों के लिए लकड़ियाँ, सब्जियाँ, सात दिनों के लिए ही भोजन की सामग्री भी अपने साथी ली। सोचा सातवें दिन तो हम पहुँच जायेंगे इसलिए हमें अधिक आवश्यकता नहीं होगी। यात्रा रात्रि के समय ही करते थे क्योंकि दिन के समय चलना अति कठिन

था, न तो मनुष्य ही चल सकता था और न ही बैल चल सकते थे। अत्यधिक गर्मी होने के कारण दिन में शामियाना लगाकर उसके नीचे बैठते थे। खाना बनाते थे, खाना खाते थे, पानी पीते थे और आराम करते थे। छ: दिन यात्रा समाप्त कर चुके थे और अब सातवाँ दिन चल रहा था। अब अन्तिम दिन सातवाँ दिन था। जो भी खाद्य पदार्थ और पीने का पानी था वह समाप्त कर दिया। सोचा आज रात को निकलेंगे और कल प्रात: चलकर पहुँच जायेंगे, जहाँ हमें चलना है। अधिक आवश्यकता नहीं है।

आपने संभवत: नहीं देखा है, मैं एक स्थान से दूसरे स्थान पर बैलगाड़ी में ही गया हूँ। बैलगाड़ियां पंक्तिबध होकर चलती हैं। जैसे प्रथम बैलगाड़ी के बैल चलते हैं बस वैसे उनके पीछे पीछे दूसरी बैलगाड़ियों के बैल चलते जाते हैं। पहली बैलगाड़ी में उसे ही बिठाते हैं जिसे मार्ग का ज्ञान होता है। उस दिन पहली बैलगाड़ी चलाने वाले को झपकी लग गई और वह सो गया। उस बैलगाड़ी के बैल कहीं घूम गये और चलते रहे। सुबह होने पर जब उठते हैं और देखते हैं कहाँ पर पहुँचे हैं। हम नगर में तो पहुँचे ही नहीं हैं। जब सब लोग उठते हैं तो कहते हैं, "यहाँ तो हम कल थे। कल हमने यहीं पर पड़ाव डाला था। आज फिर यहीं पर हम कैसे पहुँचे हैं? अब क्या होगा? इतनी गर्मी! खाने के बिना तो हम चल सकते हैं, उपवास रख लेंगे; परन्तु पानी के बिना कैसे चल सकेंगे।"

गौतम बुद्ध उस भिक्षू से कहते है, "उस समय मैं लोगों से कहता हूँ कि आओ तो हम सब मिलकर प्रयत्न करें संभवत: कहीं पानी मिल जाय।" थोड़ा आगे चलने पर हरी घास दिखाई पड़ती है। सोचा वहाँ पर पानी अवश्य होगा। क्योंकि पानी के बिना घास उग नहीं सकती। आखिर सोचा वहीं पर खोदा जाय। खोदते गये, खोदते गये; न जाने कितने फीट खोदा परन्तु पानी नहीं निकला। सूखा ही सूखा। सब थक गये। अन्त में आकर एक पत्थर तक पहुँचे। बहुत बड़ा पत्थर। कहने लगे, "अब क्या करें?" सब हताश हो गये। अपने अस्त्र आदि रख दिये। और कहने लगे, "अब अधिक कुछ नहीं कर सकते। अब मरेंगे तो यहीं पर।"

गौतम बुद्ध कहते हैं, "मैंने स्वयं यह दशा देखी। न जाने कितने फीट नीचे गये थे। मैंने जाकर उस पत्थर पर अपना कान रखा। मुझे उस पत्थर के नीचे पानी की आवाज़ सुनाई दी। मुझे विश्वास हो गया कि उस पत्थर के नीचे पानी अवश्य होगा। उस समय मैंने तुम्हें ही पुकारा। तुम मेरे साथ थे और मेरी नौकरी में थे। मैंने तुमसे कहा, "इस पत्थर को तोड़ेंगे तो इसके नीचे पानी अवश्य निकलेगा।" तुम बहुत थके हुए थे। तुमने कहा, "स्वामी! आप कहते हैं तो फिर मैं इसे अवश्य तोडूँगा।" तुम हथोड़े से पत्थर को तोड़ने लगे और अत्यधिक परिश्रम के पश्चात अन्ततः तुमने उस पत्थर को तोड़ दिया। भीतर से पानी निकल आया। उस पानी से कितनों ने अपनी प्यास बुझाई, कितनों ने तो स्नान भी किया। और जो थोड़ा बहुत खाने का सामान बचा था वह पका लिया गया और इस प्रकार तुमने कितने ही लोगों का जीवन बचाया। यदि तुम ऐसा नहीं करते तो वे सब नष्ट हो जाते थे। तुमने इतने लोगों के प्राण बचाए और अब तुम हताश हो गये हो। ऐसा कैसे होगा?" भिक्षू यह सब सुन कर कहता है, "प्रभु! मैं पुनः अपने कार्य में लग जाऊँगा।"

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

आलस्य को त्यागना है। इसलिए अभ्यास करना है और अभ्यास करने का समय यही है। अभ्यास क्या है? किसी न किसी पंक्ति को लेकर उस पर सोचना है, उसपर विचार करना है। यह एक छोटी सी पंक्ति, "काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!" अब इस छोटी सी पंक्ति पर तुम यदि विचार करोगे तो तुम्हें इससे सम्बन्धित अन्य विचार मन में आएँगे। तुम जाओगे अन्तःकरण में डुबकियां लगाते हुए। अन्ततः उस गन्तव्य स्थान, उस मंज़िल पर पहुँच जाओगे। या कोई नाम लो, जो भी तुम्हें अच्छा लगे। मौन बैठकर बार बार उसका उच्चारण करो। यदि तुम नाम का उच्चारण करते हुए जाओगे तो फिर अन्तःकरण की यात्रा में तुम पग आगे बढ़ाते जाओगे। ॐ नमः भगवते वासुदेवाय" बारह अक्षरों के इस मंत्र का प्रतिदिन संध्या के समय उच्चारण करो। अथवा आठ अक्षरों के ॐ नमः नारायणाय! मंत्र का जाप करते जाओ। जैसे जैसे उच्चारण करते जाओगे, तुम्हारा मन उसमें अधिक स्थिर होता जाएगा।

परन्तु इतने बड़े मंत्र के पीछे क्यों पड़ें। छोटा सा 'राम राम' का एक सुन्दर मंत्र तुम्हें मिला हुआ है। इसका निरंतर उच्चारण करते जाओ। अभ्यास करते जाओ। और अभ्यास में कभी भी पीछे मत पड़ो। निश्चित समय और निश्चित स्थान पर जाकर बैठो। कभी तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा, और कभी नहीं। इसकी परवाह न करके अपना कार्य करते जाओ। आनन्द देना अथवा नहीं देना प्रभु के हाथ में है। यदि चाहता है तो देता है और यदि नहीं चाहता है तो नहीं देता। हम अपना श्रम करते जाएँ। हम उसके श्रमिक हैं। "मैं तुम्हारे द्वार का श्रमिक हूँ"। इसलिए हमें श्रम करना है। हताश नहीं होना है Never give up.

चर्चिल इंग्लैंड के प्रधान मंत्री को, जिस पाठशाला में पढ़ता था उसमें बुलाया गया। और उससे कहा गया कि, "तुम आकर हमारी पाठशाला के विद्यार्थियों से मिलो।" फिर उस पाठशाला के प्रधानाध्यापक ने प्रधानमंत्री जी से प्रार्थना की कि वे बच्चों से दो शब्द कहें। चर्चिल पता है क्या कहते हैं? कहते हैं, "मेरे प्रिय नवयुवको! मुझे जो कुछ भी कहना है, वह केवल तीन शब्दों में समाया हुआ हैं? वे तीन शब्द कौनसे हैं? वे तीन शब्द हैं Never give up! कभी भी हताश न हों।" दादा गंगाराम ऐसे ही प्रकार के व्यक्ति हैं। किसी भी कार्य के पीछे लगते हैं तो फिर जब तक उसे पूर्ण नहीं करते तब तक उसे नहीं छोड़ते।

प्रभु का एक वचन मनुष्य के साथ है। वह वचन है "अभ्यास" और "वैराग्य"। इन दो शस्त्रों को यदि तुमने उठाया तो फिर लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन नहीं है।

एक सज्जन : ॐ नमः भगवते वासुदेवाय" इन शब्दों का कुछ तो अर्थ होगा?"

दादा : जी हाँ! ॐ है देवस्तुति (invocation) ॐ है स्वयं प्रभु। ॐ है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। ॐ सदैव मंत्र के प्रारम्भ में रखा जाता है।मंत्र में "नमः" का अर्थ है मैं नमन करता हूँ।" "भगवते" का अर्थ है उस भगवान को। "वासुदेवाय" उस भगवान को जो समस्त सृष्टि में समाये

हुए हैं। जो सर्वव्यापी हैं। उसे मैं नमन करता हूँ। मैं किसी रूपविशेष को नमन नहीं करता हूँ। परन्तु वह प्रभु, वह परमात्मा, जिनका हर स्थान पर निवास है, यहाँ हैं, वहाँ हैं, हर स्थान पर है। वास्तविक दर्शन तो यही है। वास्तविक दर्शन वह नहीं है कि मैं कृष्ण के रूप में उसे देखूँ अथवा गुरू बाबा (गुरू नानक) के रूप में देखूँ। वह वास्तविक दर्शन नहीं है। वास्तविक दर्शन तो वह है कि मैं कृष्ण को प्रत्येक के रूप में देखूँ। मैं तुम्हारी ओर देखूँ; कृष्ण को देख रहा हूँ। बालक की ओर देखूँ; कृष्ण को देख रहा हूँ।

ॐ नमः नारायणाय" मैं किसे नमन करता हूँ? नारायण का। नारायण कौन है? नारायण है वो "नर" जो "आयण" में आ गया है "आयण" का अर्थ है wandering अर्थात् manifestatation. manifestation क्या है? It is the wandering of God. दोनों का अर्थ एक ही है। उस प्रभु के चरणों में मैं नमन करता हूँ। वह हर स्थान पर है अर्थात् सर्वव्यापी है। रूसी अन्तरिक्षचारी (astronauts) ऊपर आकाश (Space) में गये। इधर ऊधर देखा। बोले, "प्रभु तो कहीं दिखाई नहीं देते?" तब किसी ने कहा, "जब तक तुमने प्रभु का दर्शन भीतर में नहीं किया है तब तक तुम प्रभु को बाहर नहीं देख सकते। पहले भीतर टटोलो फिर तुम देखोगे कि वह समस्त सृष्टि प्रभु का ही वस्त्र है, "ईशा वास्यम सर्वम इदम" यह सब जो भी है, उस प्रभु का ही वस्त्र है।

"काश! तुम्हें आलस्य है नयनों में!"

अभ्यास के लिए रात्रिका अन्तिम प्रहर विशेषतः बहुत ही लाभदायक है। दिन में कुल आठ प्रहर होते हैं। चार प्रहर दिन के और चार प्रहर रात्रि के। रात्रि का अन्तिम प्रहर बड़ा ही अजीब है। तीन प्रहर जैसे भी चाहिए बिताओ। खाओ, पीओ और सो जाओ जो चाहिए करो। चौथा प्रहर साढ़े तीन बजे से साढ़े छः बजे तक है। तुम चाहो तो साढ़े तीन बजे उठ सकते हो, चाहो तो चार बजे उठ सकते हो अथवा साढ़े चार या पाँच बजे भी उठ सकते हो। एकदम साढ़े तीन बजे न उठो। मैंने एक बालकी से पूछा, "कितने बजे उठती हो?" बोली "नौ बजे तक उठ जाती हूँ।" मैंने कहा, "शाबाश! कई तो दस बजे भी उठते हैं। " फिर उससे बोला, "धीरे धीरे तुम अपना समय आगे करती

जाओ और, फिर ऐसा समय आये कि तुम सूर्योदय से पहले उठ जाओ।" यह आवश्यक नहीं है कि तुम साढ़े तीन बजे उठ जाओ। साढ़े पाँच बजे अथवा छः बजे भी उठ सकते हो। सूर्योदय हो उससे पहले उठो। बहुत ही आनन्द तुम्हें आएगा। प्रारम्भ में तुम्हें कष्ट अवश्य होगा, झपकी आयेगी । बड़े बड़े सन्त महात्मा जो हो गये हैं वे तुम्हें बताएँगे कि शुरू शुरू में उन्हे झपकियाँ आती थी। झपकी आए, किन्तु छोड़ो नहीं। झपकी खाते जाओ, अभ्यास करते जाओ।

एक बहिन : आप हमारी बैट्री चार्ज करिए।

दादा : बैट्री उस समय चार्ज हो जाती है। हमें केवल प्लग (Plug) डालना है। प्रतिदिन अभ्यास करते जाओ। सत्संग में आते हो। कितना ही अच्छा हो यदि सत्संग का समय अभ्यास का समय हो। मैं सत्संग में आकर कभी कभी तुम्हारी ओर देखता हूँ, देखता हूँ कि तुम तो सत्संग में हो ही नहीं। शरीर निःसन्देह सत्संग में बैठे हैं परन्तु मन न जाने कहाँ भटक रहे हैं। हमारा क्या जाता है कि हम सत्संग में बैठकर ऐसे विचार करें।

एक बहिन : परन्तु मन उड़ जाता है। क्या करें?

दादा : इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता है। जिस समय मन उड़ जाता है, वस्तुतः हमारा दोष नहीं है। परन्तु जब हमें ज्ञात हो कि मन अब उड़ गया है तो उस समय उसे भली प्रकार लौटाकर प्रभु के चरणों में बिठाना चाहिए।

बहिन : पहले तो मन घूमकर लौट आता है परन्तु पता चलता है कि फिर उड़ गया।

दादा : भले ही उड़ जाय, तुम केवल एक काम करो, जिस समय तुम्हें पता चले कि उड़ गया है, उसे लौटा लाओ। उससे कहो, "अरे! यहाँ पर इतना मधुर कीर्तन हो रहा है। कितना अच्छा हो यदि तुम इसमें भाग लो!

बहिन : देर से पता चलता है।

दादा : प्रारम्भ में देर से पता चलेगा। धीरे धीरे जैसे अभ्यास होता जाएगा, ऐसी अवस्था आती है जो जैसे उड़ने लगता है पकड़ लिया जाता है। अभ्यास की आवश्यकता है। विशेषतः अभ्यास करके देखो, जब सत्संग में कीर्तन होता है, तुम्हारे मुख बन्द हैं। मुख बन्द रहना मन को बहुत अच्छा लगता

है, क्योंकि फिर मन बहुत ही भटकता है। दो प्रकार के मुख बन्द होते हैं। एक प्रकार का मुख बन्द है प्रारम्भ की अवस्था में जब मन बहुत भटकता है। दूसरी अवस्था तब आती है जब हम गा गा कर उस अवस्था पर पहुँच जाते हैं जब अधिक गाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उस मौन में यदि हम प्रवेश करें तो फिर मुख बन्द होने में हानि नहीं है। फिर हमारा देह का ज्ञान चला जाता है। हमें ज्ञान नहीं होता कि हम देह हैं। हम मन के ऊपर चले जाते हैं। ये दो प्रकार के मुख बन्द हैं। हम हैं पहले प्रकार के मुख बन्द में।

बहिन : दादा, जो व्यक्ति मन से ऊपर चला जाता है, उसका चिन्ह क्या है?

दादा : उसका चिन्ह श्री कृष्ण हमें श्रीमद भगवतगीता में बताते हैं। कहते हैं : वह द्वंद्व से ऊपर चला जाता है। वह प्रशंसा और निन्दा से दूर हो जाता है। गर्मी और सर्दी से दूर हो जाता है। स्वास्थ्य और रोग से भी दूर हो जाता है।

बहिन : क्या उसका शरीर अस्वस्थ नहीं होता?

दादा : उसका शरीर संभवत: अधिक रोगी होगा परन्तु रोग उसे छू नहीं पाते। वह उनसे ऊपर होता है।

बहिन : इस अवस्था तक पहुँचने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

दादा : अभ्यास करो। अभ्यास करते रहो।

(पुणे : 24-5-1986)

जो आए प्रभु की ओर से, वह सब मीठा

दादा:- आज का सुविचार:-

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

प्रत्येक परिस्थिति में शुक्र करो। शुक्र! शुक्र! शुक्र! स्वादिष्ट भोजन मिले तो भी शुक्र करो, राजशाही भोजन मिले तो भी शुक्र करो। और यदि तुम्हें सूखी रोटी मिले तो भी तुम शुक्र करो। कैसी अद्भुत अवस्था है, सारा तनाव समाप्त हो जाता है।

इस समय हमारे जीवन में कितना तनाव है। इस कारण हमारे अन्त:करण में कितनी अशान्ति है। मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता है, और वह मुझे नहीं मिलती है तो मुझे कितनी अशान्ति होती है। परन्तु मेरे बन्धु! शुक्र करो!

"सदा शुक्र करो!" ऐसा न हो कि २३ घण्टे शुक्र करो और अन्त में अपना शुक्र गँवा बैठो। "सदा शुक्र करो" यदि तुम सदैव शुक्र करोगे तो तुम शुक्र मानने वाले व्यक्ति हो। परन्तु यदि तुमने एक पल के लिए भी शुक्र नहीं किया तो फिर तुम शुक्र मानने वाले व्यक्ति नहीं हो।

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

"प्रभु! एक तुम ही जानते हो मेरी भलाई किस में है, मेरे लिए कौन सी बात अच्छी है। तुम्हें मालूम, मुझे क्या मालूम, मैं क्या जानूँ?"

एक बहिन मेरे पास रोती रोती आई। मैने पूछा, "क्या बात है?" बोली, "मैने पति के साथ बीस वर्ष ऐसे सुखों में बिताए जो समझते थे कि हम स्वर्ग में हैं। स्वर्ग क्या कुछ और होता है? हमारा घर ही स्वर्ग था। प्रतिदिन चार बजे दफ़तर से लौटते थे और ३-४५ पर मुझे फ़ोन करत थे कि वे आ रहे

हैं। मैं उसी समय जाकर चाय इत्यादि की तैयारी करती थी। गैस जलाकर मैं चाय रखती थी कि मेरे पति आएँ और मैं उन्हें चाय दूँ। एक दिन मुझे फ़ोन किया कि आ रहा हूँ। १५ मिन्टों के पश्चात् मेरा काम खतम हो जायेगा और मैं तुमसे आकर मिलूँगा। मैने जाकर चाय गैस पर रखी। चाय गैस पर ही रखी थी किन्तु वे आए ही नहीं। चार बज गये, सवा चार बज गये, साढ़े.चार बज गये, पौने पाँच बज गये तब मैंने दफ़तर में फ़ोन किया कि क्या कारण है कि वे अभी तक घर नहीं पहुँचे? उत्तर मिला कि उन्हें अकस्मात् दिलका दौरा पड़ा, घर के लिए अभी निकले ही थे, कि उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा, वहाँ पहुँचने से पहले ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये।" हमें यह पता ही नहीं है कि हमारे साथ दस मिन्टों के पश्चात् क्या होने वाला है।

"प्रभु तुम्हें तो सब ज्ञात है। तुम तो हर बात के ज्ञाता हो, तुम्हें तो मालूम है कि मेरी भलाई किसमें है। इसलिए यदि तुमने मुझे यह सूखा टुकड़ा दिया है तो इसमें भी मेरा भला ही होगा।" यह है सच्चा विश्वास।

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

कभी कभी बहुत ही स्वादिष्ट भोजन ले आता है। जब अखण्ड कीर्तन की समाप्ति होती है तब न जाने क्या क्या ले आता है: पुलाव, पापड़, बूँदी का रायता दही बड़े, पकोड़े आलू की टिकियाँ सब चित्त को प्रसन्न करने वाली चीज़े होती हैं। किन्तु फिर कभी देखो तो केवल दाल और भात होता है।

"चाहे मिले स्वादिष्ट भोजन, चाहे सूखे टुकड़े।"

प्रत्येक परिस्थिति में शुक्र! शुक्र! शुक्र!

एक अवसर पर प्यारे दादा साधू वासवाणी ने हमें शुक्र शब्द का अर्थ समझाया। प्यारे दादा की अपनी एक Dictionary होती थी। उन्हें अपना एक ढँग होता था समझाने का। बोले:- "शुक्र शब्द का अर्थ पता है क्या है? शुक्र शब्द बना हुआ है तीन व्यंजनों से: श + क + र । "श" है शाह (सिन्धी में शाह का एक अर्थ राजा भी होता है) शाहों का शाह (अर्थात् राजाओं का राजा) कहो उसे अथवा श्याम या दादा श्याम कहकर बुलाओ उसे। जैसे भी

तुम चाहो। हमारे प्रभु, हमारे स्वामी हैं। मेरी हर बात उन्हें ज्ञात है। "क" है करना, जो भी करे। यहाँ पर जो भी शब्दों पर बल दिया गया है; ऐसा नहीं कि ऐसा क्यों? और वैसा क्यों? "र" दादाजी ने कहा है कि राज़ी रहो, अर्थात प्रसन्न रहो। मेरा शाह जो भी करे उस पर प्रसन्न रहो। मेरे शाह तुम जो भी करो वह वाह! वाह! (अर्थात् प्रसन्नतापूर्क स्वीकार्य) साधू वासवाणी चौक पर प्यारे दादा जी की प्रतिमा के नीचे आएँगे तो निम्न शब्द स्तंभतल (Pedestal) पर अंकित हैं:-

ऐ दिल न कर फ़िक्र, कर शुक्र! कर शुक्र! और पवित्र समाधि पर प्रतिदिन गाते हैं:-

वाह वाह जहाँ तुम बिठाओ,
कृपादृष्टि से नूरी तुम निहारो :
शुक्र है, शुक्र तेरा।

इसके बावजूद भी हमारी दशा वही की वही है। यदि कोई अच्छी बात होती है तो कहते हैं, "वाह प्रभु! वाह! तुम कितने अच्छे हो। मैं तुम पर न्यौछावर जाऊँ। एक जीवन तो क्या मैं यदि पच्चास जीवन भी न्यौछावर करूँ तो कुछ नहीं है। इतना कहकर अभी उठता ही हूँ तो समाचार आता है कि व्यवसाय में हानि हो गई है। तुम्हारा इकलौता बेटा पानी में डूब गया। अथवा ऐसा और कोई समाचार आता है। वहीं सब भूल जाते हैं। वहीं बाल नोंचने लगते हैं।

सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

सदा कर शुक्र। इसलिए सामी साहब (सिन्धी के सन्त कवि) कहते हैं:-

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर"

प्रभु के द्वार पर हमेशा शुक्र करो। चाहे मिले स्वादिष्ट भोजन, चाहे सूखे टुकड़े। सदा कर शुक्र। सदैव कर शुक्र।

एक व्यक्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार सत्संग में बैठा था। सन्तों के पास प्राय: कोई भी आता है तो कुछ न कुछ ले आता है और आकर भेंट स्वरूप रखता है। कोई मिठाई की टोकिरी ले आता है, तो कोई

फल ले आता है। एक बार एक व्यक्ति खीरे की टोकिरी ले आया और सन्तों के चरणों में लाकर रख दी। उसे संभवतः खेत था जिसमें खीरे हुए थे। सन्तों ने कहा कि खीरे सत्संगियों में बाँट दिये जाँय। सब को खीरे बाँटे गये। एक एक को एक एक खीरा दिया गया। सन्तों को भी एक खीरा दिया गया। एक एक सत्संगी ने जैसे ही खीरे को मुख में डाला तो लगा जैसे विष का टुकड़ा मुख में गया। एक एक करके उठते हुए बाहर गये और थूक कर आ गए। परन्तु सन्त खा रहे थे और एक और सत्संगी भी बैठकर खा रहा था। अन्य सब लोग आश्चर्य में पड़ गये। उस व्यक्ति से कहा गया, "हमारे खीरे तो विष के समान है, किन्तु तुम्हारा खीरा मीठा है क्या?" वह व्यक्ति बोला, "सन्तो के पास बहुत ही स्वादिष्ट भोजन खाने के लिए मिलें हैं, बहुत ही मिठाइयाँ मिली हैं वे सब खाई हैं, अब यदि एक कड़वी चीज़ खाने के लिए मिली है तो वह क्यों नहीं खानी चाहिए।" वस्तुतः ऐसे व्यक्ति ने जीवन के रहस्य को समझा है।

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले स्वादिष्ट भोजन, चाहे सूखे टुकड़े।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता में बहुत सी योग की बातें बताई हैं। गीता को कई लोग कहते ही योगशास्त्र हैं। कहते हैं योग का शास्त्र हैं। श्री कृष्ण को कहते हैं योगेश्वरः योग का ईश्वर।

एक बहिनः- दादा! योग का अर्थ क्या है?"

दादाः- योग का शाब्दिक अर्थ है "मेल"। हम इस समय अपने प्रियतम से बिछड़े हुए है, अपने प्रभु से अलग हो गये हैं। इस कारण भटक रहे हैं। इसी कारण टीस का अनुभव कर रहे हैं। लेकिन अब तक शुक्र करना नहीं सीखे हैं। योग वह है जो दोनो को जाकर मिलाता है। योग वह विज्ञान हैं, योग वह मार्ग है जिस राह पर चलकर हम अपने प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं। गीता में श्री कृष्ण बहुत सी बातें योग के सम्बन्ध में बताते हैं। एक स्थान पर अर्जुन उनसे पूछते हैं, "कृष्ण! तुमने मुझे बहुत कुछ बताया है, परन्तु संक्षेप में मुझे योग के सम्बन्ध में बताओ कि योग क्या है?"

कृष्ण कहते है, "अर्जुन आओ तो तुम्हें संक्षेप में बताऊँ कि योग क्या है।" कृष्ण अर्जुन के कान में फूँक देते हैं और कहते हैं कि योग का एक ही शब्द में वर्णन किया जा सकता है और वह एक शब्द है "समत्वम!" यह "समत्वम" क्या है? प्रत्येक परिस्थिति में सम रहना।

१२ अध्याय में श्रीकृष्ण वर्णन करते हैं, "वह भक्त मुझे प्रिय है जो सुख दुख में समान रहता है।" हर हाल में समान है। सुख भी प्रभु की ओर से प्रसाद के रूप में आया है और दुख भी प्रभु की ओर से प्रसाद स्वरूप ही आया है। मैं सुख में व्यर्थ ही क्यों ऊँचा उड़ूँ और फिर दुख में क्यों जाकर अन्धकार में पड़ूँ दोनों ही प्रभु की ओर से आए हैं। हमारे सिन्ध के कवि ने कहा है:-

"जो आए प्रभु की ओर से, वह सब मीठा"

मेरे प्रियतम! जो भी तुम्हारी ओर से आया है वह मीठा है। यद्यपि मैं अब तक भली भाँति स्वाद लेना नहीं सीखा हूँ। इसलिए कवि कहते हैं, "स्वाद कैसे लो?" "स्वाद लोगे विश्वास करके" (चखींजे चेत करे) इस तरह यदि तुम स्वाद लोगे तो फिर ही ज्ञात होगा कि यह मिष्ठान ही है।

सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।

गुरू के द्वार पर सदैव ऐसा ही होता है, कभी कभी तो ऐसे मिलेंगे कि बदहज़मी ही कर देते हैं। फिर कभी कभी बैठकर प्रतीक्षा करो और प्रतीक्षा करो, खिड़की तक नहीं खुलेगी।

प्यारे दादा ने एक बार उपदेश में बताया था कि:- "कभी छज्जे (Bolcony) पर बैठकर देख रहा है कि कब मेरे प्रिय आते हैं। और कभी तो ऐसा भी होता है कि समस्त खिड़कियाँ और द्वार सब बन्द कर देते हैं। सावधान! कहीं खिड़की के छोटे से सोराख से भी देख सके। परन्तु सदा शुक्र करो।

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

यही शिक्षा हमें इस जीवन में ग्रहण करनी है। हम जब यह शिक्षा गृहण

करते हैं तब हमारी उन्नति होती है। कहते हैः- "मनुष्य के जन्म से अब तुम ऊपर चढ़ गये हो। इस मनुष्य जन्म में हमें यह बात सीखनी है। 'समत्वम्'।

"बैर भाव से जो रहता है दूर,
सबका मित्र, अभिमान और ममता रहित, क्षमाशील,
दयालू, रहता है वह सदैव सन्तोषी,
सुख में और दुख में है जो समान।"

प्रत्येक परिस्थिति में समान 'समत्वम्'। यह समत्व का भाव आता है जब हम शुक्र करना सीखते हैं। हर हाल में शुक्र। और शुक्र करते हैं प्रत्येक परिस्थिति में When we count our blesssings. कितने ही हैं जो देखते हैं कि उनसे छिन क्या गया? कितने हैं जो देखेंगे कि हमारे पास अब तक क्या पड़ा है? कहेंगे "प्रभु! तुम्हारी कृपा है, इतना अब तक पड़ा है।"

एक व्यक्ति को एक दिन में तीन कोटि रुपये की हानि हुई। इतने बड़े व्यापार करते हैं, मैं तो समझ ही नहीं सकता। मैं तो यह भी नहीं जानता कि तीन कोटि में बिन्दु कितने होते हैं। उस व्यक्ति ने शाम के समय अपने मित्रों को dinner पर बुलाया। वे आश्चर्यचकित हो रहे थे। उससे पूछा, "हमने सुना है कि तुम्हें बहुत बड़ी हानि हुई है?" बोला "निःसन्देह! हानि हुई है।" पूछा, "फिर क्यों हमें dinner पर बुलाया है?" बोला, "इस कारण कि मैं प्रभु का बहुत आभारी हूँ कि केवल तीन कोटि की ही हानि हुई है, अब तक कई कोटि शेष बचे हैं, पूर्णरूप से रिक्त नहीं हुआ हूँ।" इस व्यक्ति को प्रभु में पूर्ण विश्वास था। एक व्यक्ति ने एक बार एक लेख लिखा, इसे बहुत वर्ष हो गये हैं। उसने लिखा:- "We do not want a master God, we want servant God we want a God who fulfils our desires and our whishes. We are not prepared to abide by his wishes."

हम हर समय बोलते हैः- "प्रभु! मुझे यह दो, मुझे वह दो।" दस वस्तुएँ प्रभु देता है और यदि वह ग्यारहवीं नहीं देता तो फिर हमारा विश्वास टूट जाता है। जैसे किसी सेवक को सेवा निवृत्त कर दिया जाता है, और उसे कह दिया जाता हैः- "तुम बेकार हो। निकल जाओ नौकरी से।" हमारी भी यही दशा है, इस कारण हम सुखी नहीं हैं। कितना भी हमें मिलता है हमें सुख

नहीं मिलता। हमें शान्ति प्राप्त नहीं होती, हमें सन्तोष प्राप्त नहीं होता। We must count our blessings. कैसी भी दशा हो। उसकी ओर देखें और उससे कहें:- "प्रभु! इतना तुमने दिया है।"

सन्त राबिया एक दिन कहीं जा रही थी, अचानक एक शिलाखण्ड आकर उसके हाथ पर गिरा और उसका हाथ कट गया। कितना न उसे दर्द हुआ होगा। हाथ कट जाय कोई छोटी बात है क्या? एक व्यक्ति ने मुझे कान में कहा:- "मेरी बाँह चली जाय परन्तु मेरा हाथ न जाय।" उसे संभवत: ऐसी बाँह (यहाँ पर स्त्री अर्थ है, सिन्धी में बाँह के दो अर्थ होते हैं एक बाँह और दूसरी स्त्री) मिली थी। बोला:- "मेरी बाँह भले ही चली जाय परन्तु हाथ न जाय।" सन्त राबिया का एक हाथ कट जाता है। फिर भी उसके होंठो पर शब्द है शुक्र! शुक्र! शुक्र! तब किसीने उससे पूछा, "शुक्र किस बात के लिए कर रही हो? तुम्हारा तो एक हाथ कट गया है।" बोली, "शुक्र क्यों न करूँ। प्यारे प्रभु को पहले से ही ज्ञात था कि मेरा एक हाथ कट जाएगा, इसलिए दो हाथ दिये हैं मुझे। एक हाथ जब रबिया का कट जायगा तो दूसरे हाथ से काम करेगी, शुक्र है प्रभु का!" देखिए! कितनी गहराई थी उसमें। हम छोटी बड़ी बातों पर रोने बैठ जाते हैं और चिल्लाने लगते हैं। चिन्ता में पड़ जाते हैं। शुक्र का attitude (अभिवृत्ति, रुख) positive attitude (सकारत्मक अभिवृत्ति) है।

हम कितने भयभीत रहते हैं। एक बहिन ने मुझे एक बार कहा, "फ़ोन की घण्टी जब भी बजती है मेरा हृदय धड़कने लगता है।" मैने पूछा, "क्यों?" बोली, "मेरे पति बाहर गये हुए हैं, न जाने कैसा समाचार आए।" मैने उससे कहा, "कितनों के ही पति बाहर हैं, केवल तुम्हारे ही पति बाहर हैं क्या?" बोली, "न जाने क्यों जब भी घण्टी बजती है मेरा हृदय धड़कने लगता है।" देखिये, हम कितने न भयभीत रहते हैं। और होता तो कुछ भी नहीं। उस बहिन ने ही मुझे बताया कि एक दिन उसके फ़ोन की घण्टी बज रही थी परन्तु वह उठा ही नहीं रही थी। उसे भय हो रहा था। उसे पसीना निकल रहा था। परन्तु घण्टी भी बन्द ही नहीं हो रही थी। फिर फिर बज रही थी। अन्तत: उसने फ़ोन उठाया तो उसे बताया गया कि उसके पति का

तार आया है कि वे कल आने वाले हैं। उसे दुख हो रहा था कि इतनी देर से वह फ़ोन क्यों नहीं उठा रही थी।

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

एक बहिनः- दादाजी! यह शुक्र करने का सामर्थ्य भी तो प्रभु स्वयं ही देता है?

दादाः- माँगने पर ही देता है, स्वयं ही ले आता है। हम लेते ही नहीं है। इसलिए हमें माँगना चाहिए। माँगेंगे तो ले आएगा, फिर ही मालूम पड़ता है। अब हम इतने निश्चिन्त हैं जो यदि प्रभु आकर हमें सामर्थ्य भी देता है तो हम लेते ही नहीं हैं। वह क्या करेगा? एक ने कहा कि वह पानी भरने जाती है, बाकी सबके मटके भर जाते हैं परन्तु उसका मटका भरता ही नहीं। मैं बोला ऐसी भी क्या बात है, तुम्हारे पास कोई जादू का मटका है क्या? परन्तु जादू का मटका होता है तो वह एक बार खाली करने पर अपने आप दोबारा भर जाता है।" उसका मटका तो भरता ही नहीं। मैं ने उससे पूछा, "तुम्हारे मटके में कोई सोराख है क्या? बोली, "अच्छी तरह ठोक पीटकर देखा था, उसमें कोई भी सोराख नहीं है।" मैने कहा मुझे चलकर दिखाओ। जाकर देखा तो नल के नीचे मटका उल्टा रखा था। सारा पानी उल्टा बह रहा था। अन्दर कैसे जाता। हम अपना मटका ठीक तरह से तो रखें जैसे वह जब देने आए तो उसमें अन्दर पड़ तो सके। उल्टा होने के कारण सारा बह जाता है। रोज आता है देने।

एक सज्जनः- दादा! मटका सीधा करके दीजिए उसे।

दादाः- मटका भी सीधा करके दिया उसे। परन्तु वह बोली ऐसे नहीं भरेगा। फिर उल्टा करके रखा उसने। उस महिला को कैसे समझायें? फिर मैने सीधा करने का प्रयत्न किया तो बोली, "सावधान, यह मटका तुम्हारा है या मेरा?" मैने कहा, तुम्हारा

एक सज्जनः- उस महिला को सीधा करिए।

दादाः- हाँ! उस महिला को ही सीधा करना था। अब सीधा करने के

लिए सामी साहब ने हमें ऐसी औषध दी है। कहते हैं यह गोली तुम खाओ और तुम सीधे हो जाओगे। सब को सीधा करने के लिए आज हमें भी यह गोली मिली है:-

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

प्यारे दादा (साधू टी. एल. वास्वाणी), क्या दादा की हस्ती! क्या दादा की अवस्था! क्या दादा की पहुँच! तुम देखते थे अन्तिम छः वर्ष १९६० से १९६६ तक हिल भी नहीं सकते थे। यदि उठना बैठना होता था तो किसे उन्हें उठाना पड़ता था। करवट भी स्वयं नहीं बदल पाते थें पाँच अथवा दस मिन्टों से अधिक नींद नहीं कर पाते थे। यदि पाँच अथवा दस मिन्ट नींद आ भी गई तो कोई न कोई नस दुखने लगती थी अथवा ऐंठन होने लगती थी। हम ऐसी स्थिति में हों तो चिल्लाने लगें। परन्तु प्यारे दादा जी के होंठों पर अन्त तक ये ही शब्द आते थे "शुक्र! शुक्र! शुक्र!"

सदा शुक्र करो। ऐसे भी प्रभु वाह! वाह! और वैसे भी प्रभु वाह! वाह! ऐसा सरल मार्ग बताया गया है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि हमारे भीतर अब तक अहं है। हमें इस मार्ग से चलना नहीं आता। अभी यहाँ बैठा मैं तुम्हें कुछ बता रहा हूँ, तुम्हें कुछ समझा रहा हूँ यह कितना सरल मार्ग है। परन्तु यदि कुछ क्षण पश्चात आप मुझसे कुछ करेंगे तो मुझसे बात भूल जायेगी। बहुत ही सरल मार्ग बताया गया है। प्रभु तुम सर्वज्ञानी हो और तुम सब जगह देख सकने वाले हो। तुम्हें सब ज्ञात है और मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।

दूसरों की बात क्या करें, हमारे डाक्टर प्रेम ने शान्ता को फोन किया कि मैं शान्ति क्लिनिक से होकर आता हूँ। परन्तु शान्ति क्लिनिक तक नहीं पहुँच सके। उठकर दाढ़ी बनाते हैं, वहीं तनाव का अनुभव करते हैं और लेट जाते हैं। पता ही नहीं लगता कि पाँच मिन्टों में क्या होने वाला है। परन्तु उसे सब ज्ञात है। न केवल इस जन्म की, किन्तु पूर्व जन्म की भी और भविष्य में आने वाले जन्मों की भी पूरी मालूमात है उसे। इस कारण गुरूजी कहते हैं:-

"मन मूरख काहे बिललाइए, पुरब लिखिए का लिखिआ पाइए।"

अरे! तुम किस कारण बैठकर चिल्लाते हो, किसके लिए शोक से व्याकुल हो रहे हो। यह जो कुछ भी हो रहा है पूर्व लिखे हुए के कारण हो रहा है।

प्यारे डाक्टर हीरानंद हाथीरामाणी कल उनका जन्म दिवस है। आज बार बार उनका स्मरण हो रहा है। तुमने देखा था कैसे लेटे रहते थे। फिर भी उनके होठों पर बार बार यही शब्द आते थे:-

मन मूरख काहे बिललाइए, पुरब लिखिए का लिखिआ पाइए।

सूख दूख प्रभु देवण हार, अवर त्याग, तू तिसह चितार।

तुम ध्यान उसका करो जिसकी ओर से सुख और दुख तुम्हारे पास प्रसाद के रूप में आते हैं। सुख और दुख की ओर न देखो, देखो उस एक की ओर। Let your gaze be fixed on the eternal gazer ऐसा करने से तुम सुख से रहोगे और तुम्हें आनन्द भी मिलेगा।

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,

चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

एक व्यक्ति ने कुछ वर्ष हुए, मुझसे कहा, "एक दिन मैं घर से बहुत तंग होकर निकला।" मैने पूछा, "क्यों तंग होकर निकले?" बोला, "मेरी पत्नी ऐसी है कि जब मैं काम पर जाने लगता हूँ उस समय मुझसे पूछती है लौटकर क्या खाओगे और जब लौटकर आता हूँ तो वह जो मैं बोलकर जाता हूँ कभी नहीं बनाती। उस दिन वह चीज़ बिल्कुल नहीं बनती। यदि मैं बोलकर जाता हूँ कि आज मेरा मन भिंडी खाने पर है और तुम भिंडी बनाकर रखना तो उस दिन भिंडी न बनाकर करेला बनाकर रखती है। और यदि मैं बोलकर जाऊँगा कि प्याज में आलू की सब्ज़ी तो तुम बहुत ही अच्छी बनाती हो तो उस दिन वह टिण्डे की सब्ज़ी बनाकर रखती है।" फिर बोला, "एक दिन मैं इतना तंग हो गया और घर से निकला सोचा ऐसे जीने से तो इस जीवन का अन्त करना अच्छा है। इस घर में रहकर क्या करूँगा।" फिर बोला, "घर से निकलकर दादा चौक से आकर गुज़रा और प्यारे दादा के शब्द मैंने पढ़े। देखता तो रोज़ ही था, परन्तु उस दिन तीर के समान मेरे हृदय में घुस गये। कैसे शब्द:-

"ऐ दिल! न कर फ़िक्र, कर शुक्र! कर शुक्र!"

बोला:- "न जाने कैसी कृपा वे शब्द पढ़कर मुझपर हुई। ये शब्द मेरे हृदय में घुस गये। मैंने सोचा मैं फिक्र करूँ ही क्यों यदि मुझे आलू के बदिले टिंडे मिलें, और भिंडी की सब्ज़ी के बदिले करेले की सब्ज़ी मिली है। स्वयं से कहा शुक्र करो! शुक्र करो!" थोड़ा रुक कर फिर बोला, "उसी समय Simutaneously मुझे भीतर एक आवाज़ भी सुनाई दी। उस आवाज़ ने कहा:- तुम तो मूर्ख हो। तुमको यदि ऐसी पत्नी मिली है जिसका तुम्हें पता है, तो फिर उसे तुम बताते क्यों हो कि वह तुम्हारे लिए क्या बनाकर रखे। यदि तुम चाहते हो कि वह तुम्हारे लिए तैयार करके रखे तो तुम उससे कहो कि जो उसकी इच्छा हो वही बनाकर रखे और कम से कम अमुक चीज तो वह बिल्कुल न बनाकर रखे। वह बोला, "उस दिन से मैंने यही प्रयोग किया। दूसरे दिन जब उसने मुझसे पूछा तो मैंने उससे कहा कि जो तुम्हें चाहिए वह बनाकर रखो, क्योंकि तुम वैसे ही मेरी कोई बात नहीं मानती हो, परन्तु आज कम से कम करेला तो नहीं बनाकर रखना। वस्तुत: उस दिन करेला खाने की बहुत इच्छा थी। उस दिन जब मैं लौटकर आया तो देखता हूँ कि करेले तैयार रखे थे।"

"सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।"

एक सज्जन:- यदि शुक्र करना है तो पुरुषार्थ भी करना चाहिए क्या?

दादा:- शुक्र करता ही वह व्यक्ति है जो पुरुषार्थ करता है। जो पुरुषार्थ करने वाला व्यक्ति नहीं होता वह शुक्र कर ही नहीं सकता। परन्तु शुक्र इसी में है कि पुरुषार्थ करता रहूँ करता रहूँ। I must do my duty because whatever I do is my offering of love to the Lord. Therfore I must do if in the very best way that I possibly can. परन्तु जो भी मैं करता हूँ उसका परिणाम जो मेरे विचार से निकलना चाहिए, वह यदि न निकले तो भी मुझे शुक्र करना चाहिए। शुक्र होगा ही तब जब पुरुषार्थ किया जाएगा नहीं तो शुक्र होगा ही नहीं। नहीं तो मनुष्य है Jelly Fish शुक्र कर ही नहीं सकता। शुक्र की place

ही तब आती है जब हमने पुरुषार्थ किया है। पुरुषार्थ करेंगे और सोचेंगे कि अमुक बात होगी और उसका यह परिणाम होगा, परन्तु यदि उसका परिणाम उल्टा निकले जैसे हम सोचे भिंडी बनेगी और लौटने पर करेले बने हुए मिलें तो उस समय शुक्र करने की आवश्यकता है।

एक बालिका:- प्रभु में विश्वास रखते हैं। फिर भी कुछ लोग कहते हैं अभी तुम्हारा संरक्षण पिता कर रहा है। उनके बाद कौन करेगा?

दादा:- जिस व्यक्ति को प्रभु में विश्वास है उसका संरक्षण प्रभु करते हैं। उससे प्रभु की प्रतिज्ञा है।

कहते हैं एक दिन प्रभु से पूछा गया कि आप किस कार्य में व्यस्त हैं? सृष्टि की रचना तो अब समाप्त कर ली है, अब किस कार्य में व्यस्त हैं? ईश्वर बोले, "पूछो ही मत मैं सदैव एक ही सोच में रहता हूँ। मुझे दो प्रकार के भक्त हैं: एक प्रकार के भक्त वे हैं जो अपनी ही धुन में रहते हैं। उन्हें अपनी परवाह ही नहीं हैं वे कहते हैं हमारा प्रभु बैठा है, हमारा संरक्षण कर रहा है। हम क्यों चिन्ता करें? और दूसरे प्रकार के भक्त हैं जो कहते हैं प्रभु तो है पर हमें भी तो कुछ करना है। वे हैं जैसे अमुक किसान। वह खेत में बैठा काम कर रहा है परन्तु अपना जूता कमर से बाँध रखा है, कहीं जूता पहनकर काम करने से कहीं उसका तला न घिस जाय। उसे जूते के तले की चिन्ता रहती है कि कहीं वह घिस गया तो दूसरा कहाँ से मिलेगा? परन्तु दूसरे व्यक्ति ऐसे हैं जो जूते आदि की चिन्ता न करके केवल प्रभु में ही विश्वास रखते हैं और कहते हैं कि प्रभु बैठे हैं अपने आप हमें देंगे। यदि एक जूता घिस गया तो दस जूते हमें भेजेंगे।" प्रभु आगे कहते हैं, "मैं हर समय इसी सोच में रहता हूँ कि मेरे ऐसे भक्तों को किसी प्रकार का भी रती भर भी कष्ट न हो। ऐसे प्रकार के भक्त हैं जिन्होंने सब कुछ मुझ पर छोड़ दिया है।" श्रीकृष्ण भी गीता में कहते हैं "उनके योगक्षेम का भार मुझ पर है, वे उलझते नहीं। योग और क्षेम का अर्थ है जो कुछ भी उनके पास है उनकी मैं रक्षा करता हूँ, और जो उनके पास नहीं है वह मैं भेजता हूँ। योग और क्षेम दोनों का भार मुझ पर है। उनके विचार में मैं हूँ। दूसरों की चिन्ता मुझे नहीं हैं। जो अपने जूते कमर

से बाँध देते हैं, वे अपना संरक्षण स्वयं करें।

शाह साहब फ़रमाते है:-

"लग़ाम तो प्रभु तुम्हारे हाथ है, मैं स्वयं कुछ नहीं कर सकती।"

जब शाह साहब (शाह अब्दुल्लतीफ सिन्ध के अग्रगण्य सूफ़ी कवि) को घोड़े पर बिठाते हैं; कहा जाता है कि वह घोड़ा बहुत ही अड़ियल था और किसी को भी सवारी नहीं करने देता था। यदि कोई चढ़ने का प्रयत्न करता था तो वे उसे गिरा कर खत्म कर देता था। शाह साहब को जब उस घोड़े पर बिठाते हैं तो वह लग़ाम नहीं पकड़ते और कहते है:-

"लग़ाम तो प्रभु तुम्हारे हाथ है,
मैं स्वयं कुछ भी नहीं कर सकती।"

ऐसे व्यक्तियों की चिन्ता प्रभु को है। हम जैसे व्यक्तियों की चिन्ता प्रभु को नहीं है, जो यह संभालेंगे और वह संभालेंगे। प्रभु कहते है, "तुम बैठकर अपने को संभालो।"

शिव पुराण में एक आख्यान आता है:-

शिव भगवान पार्वती के साथ बैठे थे। अचानक शिव भगवान उठकर चलने लगते हैं। पार्वती सोचने लगी यह क्या। आधा शब्द ही अभी बोले थे और उठकर चल दिये। आखिर बात क्या है? अभी पार्वती यह सोच ही रही थी कि शिवजी लौट आए। पार्वती ने कहा जैसे शीघ्र गए वैसे ही शीघ्र लौट भी आए। मैंने तो समझा था कि किसी बहुत बड़े कार्य के लिए गये हैं। न जाने कब लौटेंगे। परन्तु बहुत ही शीघ्र लौट आए। क्या कारण है? शिवजी बोले, "पार्वती! मैं तुमसे गीता के सम्बन्ध में बातें कर रहा था। अचानक पृथ्वी से अपने भक्त की पुकार सुनी। मेरा एक भक्त, मस्त भक्त अपनी मस्ती में जा रहा था। धोबी ने कपड़े धोकर ज़मीन पर सूखने के लिए रखे थे। यह मेरा भक्त मिट्टी से सने पैरों से उन कपड़ों पर चलता गया। धोबी ने जब उसे देखा तो उसे बहुत ही क्रोध आया और उसे पत्थर मारने लगा। और धोबी ने उससे कहा, "मैं अभी तुम्हें देख लेता हूँ, तुम अपने को समझते क्या हो? मैने बहुत परिश्रम करके कपड़े धोये हैं और तुमने उन्हें खराब कर दिया।" उस मस्त ने भी क्या किया जो पत्थर उठा कर धोबी को मारने लगा। मैं गया उसकी

सहायता करने परन्तु देखा तो वह स्वयं पत्थर उठाकर खड़ा था। मैने उससे कहा, “प्रिय, तुम बैठकर पत्थर मारो मैं क्यों तुम्हारे बीच में पडूँ।” हमने देखा कि जो भक्त सबकुछ प्रभु पर छोड़ देता है उसकी प्रभु बहुत चिन्ता करते हैं।

तुम भी यदि सब कुछ प्रभु पर छोड़ दोगे तो सारी चिन्ता उसे होगी। यदि तुम बोलोगे कि न जाने कौन मेरी संभाल करेगा? और तुम्हें कोई बोलेगा, तुम्हारी कौन संभाल करेगा? तब प्रभु कहेंगे तुम बैठकर स्वयं अपनी संभाल करो।

“सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।”

एक एक जिज्ञासू के लिए चार बातें अति आवश्यक हैं:- “1. सब्र, 2. शुक्र, 3. धैर्य, 4. ध्यान, ये चार बातें बहुत जरूरी हैं। ये चारों अस्त्र एक एक जिज्ञासू के लिए आवश्यक हैं।

“सदा करो शुक्र, सामी प्रभु के द्वार पर,
चाहे मिले भोजन स्वादिष्ट, चाहे सूखे टुकड़े।”

(पुणे : 14-6-1986)

प्रभु नहीं मिला तो फिर क्या मिला?

दादा:- आज का सुविचार:-

"सारा संसार मिला और प्रभु नहीं मिला, तो क्या मिला?
कुछ नहीं मिला! कुछ नहीं मिला!"

"What doth it profit a man, if he gains the whole world, and losses his soul!"

सारा संसार मिला और यदि प्रभु नहीं मिले, प्यारे ईश्वर नहीं मिले, तो क्या मिला? कुछ नहीं मिला!

यही प्रवचन आज नूरी ग्रन्थ से भी मिला :–

"कहत फ़कीर सुनो रे भाई,
जूठा जग सब जाई जाई।"

मेरे प्रिय! नष्ट होने वाली वस्तुओं के पीछे हम पड़े हैं। ये सब तो चली जायेंगी। परन्तु जिसे पकड़ना चाहिए उसे हम पकड़ नहीं रहे हैं। हम एक बात केवल स्वयं से पूछें, कोई भी कार्य करें, किसी भी वस्तु की खोज में निकलें, हम पूछें कि यह काम, यह वस्तु हमें ईश्वर की प्राप्ति में सहायक होगी अथवा नहीं, यदि नहीं तो फिर हम क्या करेंगे?

हनुमान जी को सीता ने अपना हार दिया था। उन दिनों में कहते थे नौलखा हार, इस समय न जाने कितनी कोटि का होगा। फिर हनुमान क्या करता है? वह हार लेकर उसका एक एक हीरा तोड़ता है। उससे कहा जाता है, "बन्धु! यह तुम क्या कर रहे हो? ये इतने मूल्यवान हीरे तुम इस प्रकार क्यों तोड़ रहे हो?" तब उत्तर देता है, "देखना चाहता हूँ इसके भीतर "राम" पड़ा हुआ है अथवा नहीं? यदि नहीं तो फिर यह मेरे किस काम का?"

हम देखो न इन पत्थरों के पीछे दौड़ रहे हैं। मुझे इतना पत्थर मिला उसे उतना पत्थर मिला और तीसरे को उतना पत्थर मिला। हैं तो अन्ततः पत्थर ही। इन पत्थरों के पीछे हम अपना जीवन व्यर्थ गँवा रहे हैं। यह जीवन जिससे

अधिक मूल्यवान संभवत: और कुछ भी नहीं है। सब कुछ गंवा रहे हैं। "जूठा जग सब, जाई जाई" जो जा रहा है उसके पीछे दौड़ रहे हैं!

सूफ़ी पुस्तकों में एक बहुत ही सुन्दर बात लिखी हुई है। एक लड़की बहुत ही सुन्दर थी। क्या तो उसका सौन्दर्य था! उसमें से सुगन्ध आती थी और क्या ही उसकी मधुर वाणी थी! यह तुम्हारे सितार और प्यानो की आवाज़ उसके सम्मुख कुछ भी नहीं। ऐसी लड़की के लिए संभवत: सबके मन में उसे प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसके पिता के पास बहुत ही लोग उसका रिश्ता माँगने के लिए आए। पिता ने एक एक को देखा कि कौन उसकी बेटी के लिए योग्य वर होगा। तीन युवकों को उसने ढूँढ निकाला जो उसे सभी बातों में एक जैसे लगे। अब इन तीनों में कौन सबसे अधिक? उसने बालिका से कहा कि यह चुनाव मैं तुम्हारे हाथों छोड़ता हूँ, यह तीन मुझे एक जैसे प्रतीत हो रहे हैं। इन तीनों में से तुम चुनाव करो जो भी तुम्हें अच्छा लगे। एक मास बीत गया, दो मास बीत गये, नौ मास बीत गये अब तक बालिका कोई चुनाव नहीं कर सकी। अचानक नौ महीनों के पश्चात् उसका निधन हो जाता है। उसे उठाकर क़बर में दफ़ना देते हैं।

उन तीनों में से एक क़बर के पास अपना घर बना कर बैठ गया। कहने लगा जिसे उसने चाहा था उसे अब क़बर में डाल दिया गया है, मैं अब इस क़बर के ही पास रहूँगा। बस वहीं पड़ा रहता था। रात्रि भर जागता था और उसे पुकारता रहता था। दूसरे ने सोचा, जितना मैं दुखी हुआ हूँ उतना ही उसका पिता भी दुखी हुआ होगा। वह अब अकेला भी हो गया है। अब तो उनकी बालिका भी नहीं रही। मेरा कर्तव्य है कि अब मैं उनकी सेवा करूँ। यह दूसरा चाहने वाला जाकर लड़की के पिता के पास रहने लगा। उसकी सेवा की, उसकी संभाल की और उसे सहारा दिया। दोनो एक दूसरे का सहारा बने।

तीसरा जो था उसने सोचा मैं अब निकलूँ। सब कुछ त्याग कर ज्ञान की खोज में निकला, जैसे उसे ज्ञान प्राप्त हो। चलता हुआ एक नगर में पहुँचा। उसे पता चला कि उस नगर में एक व्यक्ति रहता है जिसे जादू की शक्तियाँ हैं। उससे जाकर मिला और उससे बातचीत की। आपसमें बातचीत कर ही रहे थे तो एक बालक रोता हुआ आया। जैसे ही वह रो रहा था जादूगर ने

उसे उठाकर आग में डाल दिया। उस व्यक्ति ने जब यह दृश्य देखा तो उसने मन में सोचा कि यह घर तो कातिलों का है और मुझे यहाँ से भाग जाना चाहिए। मैं यहाँ अधिक समय नहीं रुकूँगा। ऐसा सोचकर जैसे ही वह अपनी लाठी और लोटा उठाकर भागने लगा तो जादूगर ने उससे भागने का कारण पूछा। इसने उत्तर दिया, "यहाँ पर कौन रहेगा?" जादूकर बोला, "बस इतनी सी बात। इस बालक को हम आग में से जीवित निकाल सकते हैं।" उसने कुछ मंत्रों का उच्चारण किया और बालक के ऊपर हाथ से कुछ निशान किये तो बालक जीवित निकल अया। यह देखकर वह व्यक्ति बहुत ही आश्चर्यचकित हो गया। सोचने लगा ऐसी भी कोई विद्या होती है! उसने जादूगर से पूछा कि उसने कैसा मंत्र पढ़ा और कैसे निशान किये?

जादूगर ने उसे सब समझा दिया। उसे जैसे ही यह सब विद्या प्राप्त हुई वह दौड़ता हुआ क़बर के पास आया और मंत्र उच्चारण करके और आवश्यक निशान करके उसने उस सुन्दर लड़की को जीवित कर दिया जिसे मरने के पश्चात् दफ़ना दिया गया था। लड़की तो जीवित निकल आई परन्तु अब ये तीनों युवक उस लड़की पर अधिकार जमाने लगे। जिसने मंत्र पढ़ा वह मौन रहा। वह मन में सोच रहा था कि यह लड़की तो मुझे ही मिलने वाली है क्योंकि मैंने ही इसे जीवित किया है! परन्तु पहला जो लड़की के पिता के पास रहता था और उसकी सेवा करता था उसने कहा मैं तो पहले ही इसके पति के समान रह रहा हूँ क्योंकि मैं इसके पिता के पास दामाद के समान रहता हूँ और इसके पिता ने भी मुझे अपने दामाद की भाँति ही समझा है। मैंने इसके पिता की सेवा की है इस कारण यह लड़की मुझे ही मिलनी चाहिए। मेरा ही उसपर अधिकार है।

दूसरा जो क़बर के पास बैठा था वह बोला मैं रात रात भर जागकर उसके रूह से बातचीत करता था जैसे उसका रूह यहाँ से दूर न चला जाए। यदि उसका silver-cord एक बार भी टूट गया तो यह कैसे जीवित रहेगी? It was I who kept silver-cord intact. इस कारण यह सुन्दरी मुझे ही मिलनी चाहिए। मैंने सारा समय उससे ही बातचीत की है और मैंने एक पल भी दूसरे किसी का विचार नहीं किया है।

तीसरा बोला मेरा तो सोचो। मैं ही तो मंत्र लाया, नहीं तो यह यहीं पर

पड़ी रहती। मैंने ही इसे जीवित किया है इसकारण मेरा ही अधिकार है इस पर।

निःसन्देह तीनों के अधिकार अपने अपने हिसाब से ठीक थे। पर सुन्दरी से कहा गया कि अब चुनाव तुम करो। पहले भी उसे कहा गया था। लड़की ने कहा, "नौ मास पूर्व मैं चुनाव नहीं कर पा रही थी। मुझे तीनों समान लगते थे। पर अब तीनों की परीक्षा हो गई है। अब मैं चुनाव कर सकती हूँ।" आगे बोली, "जो मेरे पिता के पास रहा, उसने तो मेरे पिता की सेवा की वह तो पिता के लिए बेटे के समान हुआ और न दामाद। वह मेरे पिता की सेवा करता रहे। दूसरा जो मंत्र लाया, उसनें निःसन्देह बहुत ही अच्छा कार्य किया। परन्तु वह गया तो विद्या की खोज में। विद्या सीखकर उसने उपकार किया और मरे हुए को जीवित किया। परन्तु मैं जाऊँगी उसके पास जिसने मुझे कभी भी नहीं छोड़ा।

यह आख्यान सूफ़ी पुस्तकों में दिया हुआ है। परन्तु मैं इसकी अपने ही ढँग से व्याख्या interpret करता हूँ, तीनों योग : कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग – तीनों योगों का वर्णन इसमें किया गया है। जिसने पिता की सेवा की उसने "कर्मयोग" अर्जित किया। जो मंत्र लेकर आया उसने "ज्ञानयोग" अर्जित किया। पर वह जिसने छोड़ा ही नहीं, बैठकर देखता रहा, पुकारता रहा और अश्रु बहाता रहा! वह भक्त है। लड़की ने उसका ही चुनाव किया।

कुछ समय पूर्व बालिकाओं ने गीत गाया था, "द्वार पर सेवक बनाकर फिर मुझे निकाल न देना, देखकर मेरे अवगुण, इस कमीनी को निकाल न देना।" यह है एक एक भक्त के हृदय की पुकार : "मेरे प्रभु! निःसन्देह मैं अवगुणों से भरा हुआ हूँ, बहुत ही दोष मैंने किये हैं, परन्तु मुझे छोड़ना नहीं। अपने द्वार पर मुझे द्वारपाल बनाकर रखना। परन्तु मुझे निकाल मत देना।

एक बहिन : इसका अर्थ तो यह हुआ कि सबसे बड़ा भक्ति योग है?

दादा : वह मार्ग जो तुम चाहो। कुछ चाहेंगे मंत्र ग्रहण करना, दूसरे चाहेंगे सेवा मार्ग पर चलना।

एक बहिन : परन्तु वहाँ पर कौनसा मार्ग ले चलता है?

दादा : तीनों वहाँ पर ले चलते हैं। परन्तु यह बात बताई गई है सूफ़ियों द्वारा। सूफ़ियों का एक नक़्शबंदी सम्प्रदाय (order) है, वे इस आख्यान

का बार बार वर्णन करते हैं। हजरत जुनैद एक बहुत बड़े सूफ़ी हुए हैं। उनकी शिक्षाओं के आधार पर ही यह नक़्शबंदी सम्प्रदाय बना हुआ है। इसमें यह एक आख्यान बहुत ही सुन्दर है जिसमें हमारे तीनों योग आ जाते हैं।

एक सज्जन : दादा! गीता में श्रीकृष्ण ने क्या यह वर्णन किया है कि भक्तिमार्ग सबसे उत्तम है?

दादा : इसे सब अपने अपने ढँग से interpret कर सकते हैं। ज्ञान योगी कहते हैं कि गीता में कृष्ण ने ज्ञान को ही उत्तम पद बताया है। कर्मयोगी कहते हैं, जैसे लोकमान्य तिलक ने अपने गीता रहस्य में बताया है कि श्रीकृष्ण ने कर्मयोग को ऊँचा स्थान दिया है। पर अच्छा हो कि हम इन बातों पर वादविवाद न करें। एक एक को अपनी राह पर चलना चाहिए। वस्तुत: मार्ग इतने हैं जितने मनुष्य हैं। एक एक व्यक्ति अपने ही मार्ग से चलता है। जिस मार्ग से तुम चलोगे उस मार्ग से अन्य कोई भी नहीं गया होगा। तुम्हारा मार्ग unique है। इसकारण मार्गों के सम्बन्ध में एक दूसरे से वादविवाद न करें। सब मार्ग, सब राहें अन्तत: उस एक को ही प्राप्त करती हैं। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं :—

"एक एक मार्ग है मेरा अर्जुन!
एक एक में मैं ही उन्हें चलाता हूँ।"

श्रीकृष्ण कहते हैं, "एक एक मार्ग मेरा है। कोई देवताओं की पूजा करते हैं, कोई वृक्षों की पूजा करते हैं, कोई पत्थरों की पूजा करते हैं, कोई जल की पूजा करते हैं, किसी की भी हँसी न उड़ाओ। एक एक के हृदय में श्रद्धा है, उस श्रद्धा के आगे सर झुकाओ। वे हमारे गुरू हैं। कितनी श्रद्धा से जाकर पूजा करते हैं। यह श्रद्धा प्रभु के पास पहुँचती है। यह सब तो बाह्य बाते हैं। इसकारण जहाँ पर भी बैठो सर झुकाओ।

एक एक जिज्ञासू का यही चिन्ह है। जहाँ भी जाएगा कुछ न कुछ ग्रहण करके आएगा। दत्तात्रेय ने २४ गुरू किये। जहाँ जाता था कोई न कोई गुण ग्रहण करके आता था। अवगुण अवश्य देखो। मैं तुम्हें अवगुण देखने से मना नहीं करता। अवश्य देखो, जब तक अवगुण नहीं देखोगे तब तक उद्धार कैसे होगा? परन्तु अवगुण देखो अपने। दूसरे जिस जगह भी देखो गुण ही गुण देखो। जब तक हम अपने अवगुण नहीं देखेंगे तब तक हमारा सुधरना कठिन है।

रोज रात को नींद करने से पहिले, जो भी समय तुम्हें चाहिए निश्चित कर लो, फिर मौन बैठकर पिछले २४ घण्टे जो बीते, उनमे तुम्हारे मन में कौन से विचार उठे? तुमने कौनसे शब्द मुख से निकाले? तुमने कौनसे कार्य जीवन के मैदान में किये? क्या ऐसा कोई कार्य था क्या जो तुम्हें नहीं करना चाहिए था; और तुमने किया? अथवा ऐसा कोई कार्य था जो तुम्हें करना चाहिए था और तुमने नहीं किया? इसके लिए क्षमा माँगो। प्रभु को प्रार्थना करो कि तुम्हें शक्ति दे कि तुम फिर कभी ऐसा न करो। फिर कभी ऐसे शब्द न उच्चारो। एक बात और याद करनी चाहिए कि जो भी शब्द मेरे मुख से निकल गये हैं और उनसे किसी भी भाई अथवा बहिन को दुख पहुँचा है तो समझना चाहिए कि इससे उस भाई अथवा बहिन को दुख नहीं पहुँचा वरन् उस प्रभु को पहुँचा जो उनके भीतर प्रतिष्ठित है। इसलिए पुकारो : "प्रभु! मुझे क्षमा करो, मुझे शक्ति दो ताकि मैं फिर कभी ऐसा कार्य न करूँ।

जीवन की राह पर चलने के लिए एक बात की अत्यधिक आवश्यकता है, वह है इच्छा शक्ति। यह दृढ़ता हमें चाहिए। परन्तु यह दृढ़ता हमें प्रयत्न से नहीं आती। यह आती है प्रार्थना द्वारा। प्रार्थना करनी चाहिए। एक एक जिज्ञासू के लिए यह आवश्यक है। एक और परामर्श भी मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। अपने अनुभव से मैं तुम्हें बताता हूँ कि इससे बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। वह यह कि जो भी तुम सोचते हो कि पिछले २४ घण्टों में तुमने क्या किया? मान लो आज रात को तुम बैठे और कल रात के बाद तुम शुरू करोगे, फिर आज प्रातःकाल की बातें, फिर दोपहर की बातें, फिर संध्याकाल की बातें फिर आज रात क्या किया। परन्तु मैं तुम्हें एक प्रार्थना करूँगा कि जब तुम बैठो उस मिन्ट से लेकर reverse direction में जाओ। इससे तुम्हें बहुत सहायता मिलेगी। इससे पहले क्या हुआ? इससे पहले क्या हुआ? इससे पहले क्या हुआ? शुरू शुरू में तुम्हें थोड़ा कष्ट होगा परन्तु मैं समझता हूँ कि एक सप्ताह के भीतर तुम्हें आदत पड़ जाएगी और तुम्हें आसान लगने लगेगा।

एक सज्जनः- दादा! यदि कोई स्त्री सत्संग में जाना चाहे परन्तु उसके पति उसे न जाने देना चाहें तो फिर वह स्त्री क्या करे? पति का कहना माने या सत्संग में जाए।

दादाः- मैं समझता हूँ, यह प्रत्येक की अपनी स्थित पर आधारित है।

संभवतः किसी एक पत्नी को "हाँ" कहा जा सकता है दूसरी को "ना"। हमें तो यह शिक्षा मिली हुई है कि एक एक अपना कर्तव्य पालन करे। एक पत्नी थी, मद्रास में रहती थी। मेरे पास आई और मुझसे कहने लगी कि मेरे मन में प्रभु के लिए प्यास बढ़ती जाती है, परन्तु मुझे एक कष्ट है। संध्याकाल के समय जब मैं सत्संग में जाना चाहती हूँ, उसी समय मेरे पति घर लौटते हैं और चाहते हैं कि मै उनकी सेवा में उपस्थित रहूँ। मैं उन्हें भोजन इत्यादि बनाकर खिलाती हूँ। फिर भी मेरे भीतर द्वन्द्व चल रहा है कि मैं क्या करूँ? मैने उससे कहाः- "मेरी बहिन! तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम बैठकर पति की सेवा करो। पति में ही तुम परमेश्वर को देखो। ऐसा समझ लो कि तुम ईश्वर की ही सेवा कर रही हो। हमें एक एक काम वस्तुतः इसी भावना से करना चाहिए। यह समझ कर कि प्रत्येक कार्य हम अपने ईश्वर के चरणों में फूल भेंट रख रहे हैं। फिर हम जहाँ हैं वहाँ सत्संग ही है। अवश्य जाएँ। क्योंकि सत्संग है जहाँ भक्तों के साथ मिलकर हम नाम का जाप करते हैं, और नाम का उच्चारण करते हैं। एक एक जिज्ञासू के हृदय में यह प्यास उत्पन्न होती है। इसलिए अच्छा है कि हम प्रार्थना करें:- "प्रभु! हमारे लिए भी द्वार खोल!" और पति को भी यदि हम प्रयत्न करके इस विचार से अवगत कराएँगे तो कूछ अवस्थाओं में पति भी प्रसन्न हो जाते हैं।

एक बहिन थी, मुझे कहती थी कि वह भिंडी इतनी अच्छी बनाती है कि उसके पति को बहुत ही अच्छी लगती है। मैने उससे कहा, "फिर तुम्हें कुछ पूछना हो तो तुम उसे भिंडी बनाकर खिलाओ। खाकर प्रसन्न हो जाएगा और फिर तुम कुछ भी पूछोगी तो कहेंगे "हाँ" परन्तु घर में कलह मत करो। कितने ही मैंने पति देखे हैं जो नहीं चाहते कि उनकी पत्नियाँ किसी ऐसे वैसे सत्संग में जाएँ। सत्संग कोई किस प्रकार का कोई किस प्रकार का। यह भी एक कारण है। इसलिए स्त्री को पति का परामर्श लेना चाहिए। परन्तु देखा गया है कि स्त्री को सोचने की शक्ति (intuition) अधिक होती है। इसलिए पति को भी चाहिए कि कोई भी काम करे तो स्त्री से परामर्श अवश्य करे और उस कार्य पर उसका आशिर्वाद ले।

एक बहिन:- दादा, जब ध्यान के समय नींद आने लगे तो उस समय क्या करना चाहिए?

दादा:- जिस समय तुम ध्यान में बैठो उस समय यदि तुम्हें नींद आने लगे और तुम्हें मालूम हो जाय कि अब तुम नींद में हो तो फिर अपने आप को सजग करने का प्रयत्न करो। कितनों के साथ ही ऐसा हुआ है। मैं भी इस दौर से गुज़रा हूँ। ध्यान में बैठता था और नींद आने लगती थी। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। परन्तु जब भी हमें यह पता चल जाए कि हम नींद में हैं तो उस समय उठकर आँखों को पानी के छींटे लगाकर फिर ध्यान में बैठ जाएँ। अभ्यास करते रहना चाहिए और उस समय ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि ध्यान उस समय करो जब तुम fresh हो। इसके लिए प्रात:काल का समय बहुत ही अच्छा है। प्रात:काल नींद करके उठने के कारण दुबारा नींद नहीं आती। अभ्यास के द्वारा तुम इस पर भी विजय पा लोगे।

प्राय: ध्यान के मार्ग में तीन बाधाएँ आती हैं:- पहिली बाधा यह है कि जैसे ही ध्यान में बैठते हैं तो नींद आने लगती है और फिर नींद में स्वप्न आने लगते हैं। स्वप्नों में दर्शन आने लगते हैं। पर यदि स्वप्न में गुरू आ गए तो मै समझूगाँ कि मुझे गुरू के साक्षात दर्शन मिल गए। वस्तुत: यह साक्षात दर्शन नहीं है। मैं तो स्वप्न ही देख रहा था।

एक सज्जन:- प्रभु को प्रार्थना करते समय हमारा मन वहाँ नहीं है तो इस हालत में हमें क्या करना चाहिए ताकि हमारा ध्यान प्रभु में लगे?

दादा:- एक बहुत ही सरल साधन है। जब तुम मौन बैठो या प्रार्थना क रना चाहो तो यह स्मरण रहे कि प्रार्थना शब्दों तक सीमित नहीं है। प्रार्थना है हृदय का भाव। हृदय की भावना में यदि कोई बाधा आ गई और हमारे विचार कहीं और गए तो फिर यह प्रार्थना नहीं है। इस प्रार्थना का कोई मूल्य नहीं है। इसके लिए एक साधन बहुत ही सरल है। जिस समय तुम मौन में बैठते हो उस समय तुम्हारा मन अवश्य भटकता है और हम उसके साथ भटकने लगते हैं। फिर जब यह मालूम पड़ जाए कि मन प्रभु के चरणों से दूर भटक रहा है तो उस समय मन से लड़ो नहीं, क्योंकि जितना लड़ोगे उतना ही मन तुम्हारा शत्रु हो जाएगा। परन्तु बहुत ही मधुरता से जैसे बालक को प्यार से पुचकारते हैं: जब बालक रोता है तब उसे कहते हैं:- "बेटे! तुम्हें क्या चाहिए? तुम मत रोओ! रोने से तुम्हें क्या मिलता है?" इस तरह अपने आपको भी पुचकारो। मैं कितनी ही बार अपने साथ ऐसे करता था। हे मेरे मन! तुम्हें

भटकने से क्या मिलता है? मेरे प्रिय! तुम भटक कर आए लंदन से, और घूमकर आए अमेरिका से। तुम्हें क्या मिला? तुम्हें मिला तो कुछ भी नहीं। अरे! सब कुछ है यहाँ पर चरणों में। उसे इस प्रकार समझाता रहता था। जब जब देखो कि तुम्हारा मन भटक रहा है तब उसे लाकर दो नयनों के बीच भृकुटी में बिठाओ। फिर भटकेगा। फिर लौटा लाओ उसे। इस प्रकार यदि तुम अविरल तीन सप्ताहों तक करोगे तो तुम्हें इसका परिणाम बहुत ही अच्छा मिलेगा। परिणाम तत्काल प्राप्त नहीं होता। परन्तु कुछ एकागिरता अवश्य प्राप्त होती है। धीरे धीरे तुम देखोगे तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा। परन्तु अविरल तीन सप्ताह तक ऐसा करते रहो। अविरल का अर्थ यह कदापि नहीं है कि चौबीसों घण्टे ऐसे करते रहो। अविरल का अर्थ यह है कि उस समय जब तुम मौन में बैठो। केवल जब तुम मौन में बैठो उसी समय ऐसा करो।

एक बहिनः- क्रोध पर कैसे नियंत्रण करें?

दादाः- एक उपाय क्रोध पर नियंत्रण करने के लिए यह है कि अपने मन को हम समझाएँ कि जो कुछ भी हो रहा है वह प्रभु की इच्छा से ही हो रहा है और इसमें मेरा ही भला है। "जा तुध भावइ, साई भली कार, तू सदा सलामत निरंकार।" इस अभ्यास के द्वारा मानलो कि मैंने किसी बात की अपेक्षा की परन्तु वैसा नहीं हुआ, प्रायः इस कारण से क्रोध आता है। मैं एक बात चाहता हूँ परन्तु होती है दूसरी बात इस पर मुझे क्रोध आ जाता है। कितनी बार नौकरों से कुछ कह दिया जाता है। फिर नौकर बिचारे ठीक से समझे नहीं। तुम उन्हें कुछ कहो और वे करें कुछ और। तुम्हें जब पता चलता है तो तुम सोचते हो कि बड़ी मुसीबत आ गई। अब हमें उस समय यह ध्यान होना चाहिए कि वह तो नौकर है। यदि उसकी बुद्धि इतनी विकसित होती तो वे यह कार्य करने ही क्यों आते?

मैं छोटा बालक था। सात-आठ बरस का। मिस्टर प्राईस कराची में Educational Inspaector होते थे। मैं उनके घर बैठा था। मैंने देखा कि उनकी पत्नी नौकर पर बहुत ही गुस्सा कर रही थी। मिस्टर प्राईस ने उससे पूछा कि तुम इस पर इतना क्रोध क्यों कर रही हो? बोली, "समझता ही नहीं है।" तब मिस्टर प्राईस ने बहुत अच्छा उत्तर दिया। बोले, "यदि इसमें इतनी समझ होती तो फिर तो यह मिस्टर प्राईस होता और Educational Inspector बना

हुआ होता। पर क्योंकि इसकी समझ कम है इसलिए ही यह नौकर बना बैठा है। अब तुम उसकी समझ कम होने पर उस पर गुस्सा क्यों करती हो?" क्रोध को रोकने के लिए हमें अभ्यास करना है, कुछ उपाय करने पड़ते है। एक उपाय यह कि क्रोध आने पर पच्चास तक गिनती गिनो। 1,2,3,4,5——— पच्चास तक पहुँचते पहुँचते तुम्हारा क्रोध समाप्त हो जाएगा। दूसरा उपाय कहते हैं कि जब क्रोध आए तब पानी पीना चाहिए। उस समय पानी भरकर एक एक घूँट पीना चाहिए। जितने में पानी भरने जाओगे और आकर पीने लगोगे तब तक तुम्हारा गुस्सा ही ठण्डा हो जाएगा। गुस्सा आए तो कहो कि मैं आज नहीं कल गुस्सा करूँगा।

महात्मा गांधी के पास एक व्यक्ति आया उससे किसीने बहुत बुरा व्यवहार किया था। वह गांधी जी से आकर मिला और आकर बहुत रोया। गांधी जी से कहा कि उस व्यक्ति ने इतना बुरा व्यवहार किया है कि, "मैं उसे एक पत्र लिखना चाहता हूँ कि वह व्यक्ति अपने को समझता क्या है? और उसने क्या किया है?" गांधीजी ने उससे कहा, "यह पत्र तुम लिख क्यों नहीं रहे हो, किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो?" वह व्यक्ति बहुत ही तीखे शब्दों में पत्र लिखकर लाया। कहने लगा, "अब मैं इसे पोस्ट करूँ?" गांधीजी बोले, "मैंनें थोड़े ही तुमसे कहा कि पोस्ट करो। मैंने तो तुम्हें कहा कि तीव्र शब्दों में जाकर पत्र लिखो। तुमने लिखा। अब इसे फाड़कर कूड़े के डब्बे में डाल दो। तुम्हारे भीतर का गुस्सा तो अब ठण्डा हो गया है।" बोला, "हाँ! गुस्सा निकल गया।"

भिन्न भिन्न मार्ग हैं। जो भी मार्ग तुम चाहो। पर अन्त में यदि तुम क्रोध से छुटकारा पाना चाहते हो तो पहले यह मालूम करो कि गुस्सा कर किस पर रहे हो, जब वस्तुस्थिति तो यह है कि हो तो सब कुछ प्रभु की आज्ञा से ही रहा है।

(जाकरता : 20-3-1983)
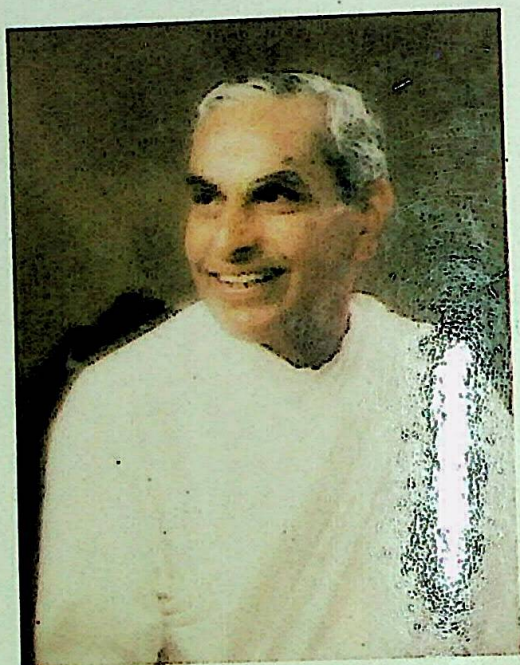
हैदराबाद सिंध में अगस्त 1918 में जन्मे दादा जे.पी. वास्वाणी ने अंग्रेजी व सिन्धी भाषाओं में कई पुस्तकें लिखी हैं। आप ने विज्ञान का अद्यात्मवाद के साथ कुछ इस प्रकार से मिश्रण किया है जो आम आदमी की समझ में आसानी से आ सकता है। इसी ज्ञान की आभा को सामने रख कर दादा जशन को कई विश्वमंचों पर भाषण के लिए आमन्त्रित किया गया है। आप ने कोलम्बु हिन्दु कांफ्रेंस को 1982 में, न्युयार्क की दसवीं हिन्दु कांफ्रेंस को 1984 में तथा ओक्स्फर्ड में 1988 में मानव विद्यमानता पर आद्यात्मिक एवं पारलियामैंटरी नेताओं की विश्व कांफ्रेंस के अतिरिक्त कई अन्य सम्मेलनों में भी भाग लिया है। राष्ट्र संघ में विश्व शान्ति एवं लन्दन के हाउस आफ कामन्ज में 'युद्ध विहीन विश्व' जैसे गहन विषियों पर आप ने भाषण दिए।

जगदीश कौशल

(साप्ताहिक अमरदीप लंदन, जून 1990)